वेदशास्त्र प्रवचन सहायक

व्यावसायिक पाठ्यक्रम स्तर 3.0

राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा मान्यता प्राप्त

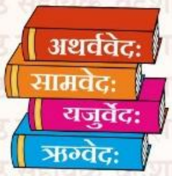

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - 456006 (म.प्र.)

Phone : (0734) 2502266, 2502254, E-mail : msrvvpujn@gmail.com, website - www.msrvvp.ac.in

वेदशास्त्र प्रवचन कनिष्ठ सहायक

प्रधान सम्पादक

प्रो. विरूपाक्ष वि. जड्डीपाल्

सचिव

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

लेखकगण

डॉ. जय प्रकाश द्विवेदी — श्री यादवेश शर्मा

आचार्य, पी०एचडी०रहस्यान्त(शिक्षक सामवेद कौथुम) — घनान्त (शिक्षक कृष्ण यजुर्वेद तैत्तिरीय)

डॉ. गोविन्द प्रसाद शर्मा, ज्योतिषाचार्य

एम०ए०, एम० फिल०, पी०एचडी०(शैक्षिक सहायक)

प्रधान संयोजक

डॉ.अनूप कुमार मिश्र

सहायक निदेशक, प्रकाशन एवं शोध अनुभाग

आवरण एवं सज्जा : श्री शैलेन्द्र डोडिया

तकनीकी सहयोग एवं टङ्कण : श्री नरेन्द्र सोलंकी

© महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जयिनी

ISBN : — मूल्य :

संस्करण : 2024 — प्रकाशित प्रति : PDF

प्रकाशक : महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान

(शिक्षामन्त्रालय, भारत सरकार की स्वायत्तशासी संस्था)

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - 456006 (म.प्र.)

Email: msrvvpujn@gmail.com, Web: msrvvp.ac.in

दूरभाष (0734) 2502255, 2502254

भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की पाठ्यचर्या एवं राष्ट्रीय कौशल भारत मिशन का उद्देश्य शिक्षण विकास एवं प्रशिक्षण के द्वारा शिक्षार्थियों का सर्वांगीण विकास कर रोजगार प्रदान करना है। महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान उज्जैन सदैव शैक्षिक नवाचार के क्षेत्र में अग्रसर रहा है अतः आदर्श वेद विद्यालयों, पाठशालाओं एवं भारत के विद्यालयों में वैदिक कौशल विकास शिक्षण एवं प्रशिक्षण के द्वारा अनेकानेक गतिविधियों के माध्यम से शिक्षार्थियों को रोजगार के अवसर प्रदान कर रहा है, जिससे शिक्षार्थी प्रशिक्षण के ज्ञानार्जन द्वारा स्वयं को अद्यतन एवं जागृत कर सकेंगे तथा इसके विषय ज्ञान का लाभ अपने दैनन्दिन जीवन के साथ-साथ आजीविका प्राप्त कर राष्ट्र निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकेंगे।

वेदशास्त्र प्रवचन सहायक पाठ्यपुस्तक में इकाईयों के विषयों को विविध आयामों के साथ सहज एवं प्रभावी तरह से प्रस्तुत किया गया है लेकिन फिर भी **कोई दोष हों तो हमें सूचित अवश्य** करें क्योंकि हमारा परम उद्देश्य वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर वैदिक ज्ञान को कौशल विकास के माध्यम से जन-जन पहुँचाना है। अतः पाठ्य पुस्तकों की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए विद्वानों के समस्त सुझावों का स्वागत है।

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन

भूमिका

वेद सम्पूर्ण जगत का ज्ञानाधार स्तम्भ माना जाता है, वैदिक ज्ञानसंविधान को अपनाकर समस्त मनुष्यप्राणी अपने जीवन के प्रगतिपथ के तरफ उन्मुख हो रहे हैं।लाभदृष्टि के अनुसार वेद हमें मनोभिलषित कामनाओं की पूर्ति एवं अनिष्ट(हानिकारक) विषयों से रक्षा का उपाय बताता है। परन्तु जो प्राणी वेदशास्त्रज्ञान से विमुख होता है उसके जीवन में सुख, कार्य में सिद्धि अथवा परमगति भी नहीं मिलती है।**"य:शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्ततेकामकारत: न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं नपरां गतिम्"** (श्रीमद्भगवद्गीता१६/२३) ।

निरुक्त ग्रन्थ के अनुसार अत्रि, भृगु, वशिष्ठ, विश्वामित्र, जमदग्नि आदि अनेकों ऋषियों ने वेदमंत्रों को स्वयं अपने आँखों से प्रत्यक्ष दर्शन किए तत्पश्चात वे अपने अन्यशिष्यों को भी वेदमन्त्रों का उपदेश प्रदान किए ।

साक्षात्कृत-धर्माण ऋषयोबभूवु: तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृत धर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादु:, उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषु; वेदं च वेदाङ्गानि च (निरुक्त 1/6) ।

उन्होंने अन्य शिष्यों को जो वेदोपदेश दिया यही उपदेश **वेदप्रवचन** परम्परा कहलाई। यह वैदिक मन्त्र-प्रवचन परम्परा सर्वप्रथम परमपिता परमेश्वर ने प्रारम्भ की , श्वेताश्वतरोपनिषद् के अनुसार इस परम्परा को आगे बढाने के लिए परमपिता परमेश्वर ने सर्वप्रथम ब्रह्मा जी को वेदज्ञान धारण कराए हैं।**"यो ब्रह्माणं विदधातिपूर्वम्"**(कृ.य.श्वेताश्वतरोपनिषद्) ।ब्रह्मा जी ने अपने मानस पुत्र वशिष्ठ को वशिष्ठ ने शक्ति ,शक्ति ने पाराशर,पाराशर ने अपने पुत्र वेदव्यास और वेदव्यास ने अपने प्रमुख शिष्यों में पैल को ऋग्वेद,वैशम्पायन को यजुर्वेद,जैमिनी को सामवेद, तथा सुमन्तु नामक शिष्य को अथर्ववेद पढाए हैं।

समय समय पर वेदों के प्रवचन परम्परा की विकास के साथ-साथ ह्रास भी हुआ है। विकास होने की स्थिति में ऋषियों के नाम पर शाखाओं का विस्तार हुआ है एवं ह्रास होने की स्थिति में कतिपय शाखाओं का ही विलोप हुआ है परन्तु मूल वेद मन्त्रों में विकास ह्रास कुछ भी नहीं हुआ है व मूल वेद मन्त्र शाश्वत, स्थाई, नित्य है । क्योंकि वेद परमात्मा का निश्वास प्राण रूप में प्रतिष्ठित है ।**यस्य निश्वसितं वेद ।**

वेदों के ह्रास होने का मुख्य कारण आलस्य, प्रमाद ही है, इसी कारण तैत्तरीय उपनिषद् शिक्षावल्ली में गुरु द्वारा शिष्य को उपदेश देने के सन्दर्भ में स्वाध्याय एवं प्रवचन में प्रमाद(आलस्य) न करने का कठोर आदेश प्राप्त होता है । **"स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्"** ।

वेदप्रवचन के विशिष्टता के सम्बन्ध में कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीयशाखा के शिक्षावल्ली के अनुसार गुरु द्वारा शिष्य को बताई गई विद्यारूपी प्रवचन उपदेश विद्यासंधि-संहिता कहलाती है। यह प्रवचनोपदेश ही दोनों को जोडती है। **"आचार्यः पूर्वरूपम्। अन्तेवास्युत्तररूपम्। विद्या सन्धि:। प्रवचनꣳ सन्धानम्। इत्यधिविद्यम्॥ (तै. उ. शिक्षावल्ली)**

आपस्तम्बसूत्र के अनुसार यह वेदप्रवचन मुख्य रूप से दो भागों में उपदेशित हैं-

"मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्"(आपस्तम्बसूत्र)

1. **मन्त्रसंहिता या सूक्तभाग**
2. **ब्राह्मण या आख्यान(कथा)भाग**

उपर्युक्त दोनों भागों में (प्रकृतिरूपा) देवताओं के उत्कृष्टमहिमा गाथागान की गई है। प्रथमभाग में मन्त्रों के सूक्त-स्तुतियों से तथा दूसरे भाग में आख्यान(कथा) के द्वारा की गई है।

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म" छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार वेदों में ईश्वरतत्त्व को सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र विज्ञान, गणित, योग, आदि अनेको विषयों के रूप में सम्बोधित किया गया है, । प्राचीनकाल से आजतक ईश्वरतत्त्व के इन रहस्यों को सार रूप में जानने की उत्कण्ठा बनी रहती है। छात्रों में मूलमन्त्र कण्ठस्थपाठ ज्ञान के साथ-साथ वेदार्थ ज्ञान एवं वेद-पुराणों में प्रवचन-कथा अभ्यासज्ञान का होना परम आवश्यक है, इस हेतु कौशलविकास मन्त्रालय,भारत सरकार द्वारा पाठ्यक्रम सञ्चालित की जा रही है जिसका नाम **"वेदशास्त्रप्रवचन पाठ्यक्रम"**है। इसके द्वारा वेद कण्ठस्थीकरण में पिछडे हुए छात्रों को मदद मिलेगी।

इस वेदशास्त्रप्रवचन ग्रन्थ के पूर्ण अध्ययन से छात्रों के वेदमौलिक मन्त्रों के अभ्यास के साथ-साथ मन्त्रों का अर्थभाग का भी सम्यक ज्ञान होगा, वैदिककथा-प्रवचन के द्वारा उनके अन्दर अन्तर्मुखी कौशल विकास की प्रवृत्ति जगेगी जिसके द्वारा वेदमन्त्रों के प्रायोगिकपक्ष (कथाभाग) आदि के तरफ छात्रगण उन्मुख हो सकेंगे।

- **डॉ.जय प्रकाश द्विवेदी**

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं पृष्ठ संख्या

इकाई 01 ब्राह्मण ग्रन्थ का संक्षिप्त परिचय एवं वर्ण्यविषय 1 - 13

- वेदपरिचय (पूर्वकक्षा की अतिसंक्षिप्त पुनराभ्यास)
- ब्राह्मण ग्रन्थ की परिभाषा
- ब्राह्मण ग्रन्थ का महत्व
- ब्राह्मण ग्रन्थ का प्रयोजन
- विषयवर्गीकरण (ऋग्वेदीय ब्राह्मण ग्रन्थ, यजुर्वेदीय ब्राह्मण ग्रन्थ, सामवेदीय ब्राह्मण, अथर्ववेदीय ब्राह्मण ग्रन्थ)

इकाई 02 व्याख्यान हेतु भाषायी दक्षता 14-46

- अमरकोश-स्वर्गवर्ग पर्यन्त (कण्ठस्थीकरण एवं सामान्य भावार्थज्ञान)
- संज्ञा प्रकरण, सन्धि - स्वरसन्धि, समास-अव्ययीभावबहुब्रीहि, कारक विभक्तियों का सामान्य ससूत्र परिचय- प्रथमा, द्वितीया, तृतीया विभक्ति। (लघुसिद्धान्तकौमुदी ग्रन्थानुसार)
- पद, पदच्छेद एवं अन्वय क्रम परिचय एवं अभ्यास

इकाई 03 प्रवचन कौशल विकास हेतु शिक्षाप्रद वैदिक आख्यानों का प्रयोगात्मक अभ्यास 47-55

- ऋग्वेदीय विश्वामित्र-नदी संवाद की कथा
- ऋग्वेदीय वर्षा सूक्त (देवापि-शान्तनु कथा)
- यजुर्वेदीय-पुरुषसूक्त (यज्ञरूपी विष्णु द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति) (मन्त्रपठनाभ्यास, भावार्थज्ञान एवं प्रवचनाभ्यास)

इकाई 04 ब्राह्मणग्रन्थ एवं उपनिषदों में प्राप्त कुछ लघु आख्यान 56 - 60

- ऐतरेय ब्राह्मण में पठित शुन:शेप की कथा

- बृह.उपनिषद् में वर्णित-याज्ञवल्क्य एवं गार्गी संवाद की कथा
- छान्दोग्योपनिषद् में वर्णित-आरुणि-श्वेतकेतु संवाद की कथा

(मन्त्रपठनाभ्यास, भावार्थज्ञान एवं प्रवचनाभ्यास)

इकाई 05 पौराणिक आख्यानों का परिचय एवं कथावाचन प्रयोग 61 - 69

- श्रीमद्भागवत महापुराण में वर्णित लघु आख्यान- श्रीकृष्ण जन्म की कथा, सान्दीपनि आश्रम में श्रीकृष्ण की शिक्षा-दीक्षा की कथा (श्लोक पठनाभ्यास भावार्थज्ञान एवं प्रवचनाभ्यास)

इकाई 06 श्रीमद्भगवद्गीता के अध्यायों में वर्णित विषयों का संक्षिप्त परिचय एवं प्रवचनाभ्यास 70 - 79

- श्रीमद्भगवद्गीता के १-३ अध्यायों में निहित विषयों के अतिसंक्षिप्त परिचय

(सुस्वर पठनाभ्यास, भावार्थज्ञान एवं प्रवचनाभ्यास)

इकाई 07 वैदिक प्रवचनों में सहायक शिक्षाप्रद लौकिक कथाएँ 80 - 95

- हितोपदेश – मित्रलाभ ग्रन्थ के दो शिक्षाप्रद कथा
- राजा सुदर्शन एवं उनके पुत्रों की कथा
- काक-मृग-कूर्म एवं चूहा की कथा

(कथाओं से सन्दर्भित श्लोक कण्ठस्थीकरण एवं भावार्थज्ञान)

इकाई 08 प्रवचनों में सहायक प्रसिद्ध वैदिकसूक्त एवं लौकिकश्लोक संग्रह 96 - 121

- वैदिक सूक्तसंग्रह-(गणपति अथर्वशीर्षसूक्त,

सामवेदीय-पावमान सूक्त (षष्ठ खंड), अथर्ववेदीय-भूमिसूक्त, शुक्लयजुर्वेदीय-आनोभद्रसूक्त

- पौराणिक-लौकिक श्लोक संग्रह - मनुस्मृति १ अध्याय

(पौराणिक एवं वैदिक सूक्तों का शुद्ध उच्चारण, पठनाभ्यास एवं भावार्थज्ञान)

पाठ्यक्रम सम्बन्धित ग्रन्थ सूची 122

॥ वैदिक प्रार्थना ॥

"वेदशास्त्र-प्रवचन" विषय का अध्ययन प्रारम्भ करने से पूर्व, आइए हम (गुरु-शिष्य) श्रद्धापूर्वक यजुर्वेद संहिता में पठित राष्ट्रसंवर्द्धनसूक्त को मङ्गलाचार के रूप में प्रार्थना करें-

ॐ आब्रह्मन्ब्राह्मणोब्रह्मवर्चसीजायतामा राष्ट्रेराजन्यः शूरऽइषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णूरथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नऽओषधयः पच्यन्ताँ योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ -(यजु० २२/२२)

इस वैदिक मङ्गलाचार में हमारे उन्नत राष्ट्र के लिए परमपिता परमेश्वर से १० प्रकार की प्रार्थना-याचना की गई है।

(1) ॐ **"आब्रह्मन्ब्राह्मणोब्रह्मवर्चसीजायताम्"** हमारे राष्ट्र में ब्राह्मण ब्रह्मतेज से युक्त हों, वे वेदशास्त्र में निपुण होकर सन्ध्या गायत्री,अग्निकार्य,नित्याग्निहोत्रादि कार्य से ब्रह्मवर्चस वाला होवे,ताकि वे अपने ज्ञान-दीप्ति से समस्त जगत् को प्रदीप्त करते रहे। जो ब्रह्म को जानता हो, ऋषियों, मुनियों और मेधावियों का जो राष्ट्र को सन्मार्ग दिखाते हैं उनका ही नाम ब्राह्मण है ।

(2) **"आ राष्ट्रेराजन्यः शूरऽइषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्"** हमारे राष्ट्र में क्षत्रीय शूरवीर होवे तथा शस्त्र चलाने में निपुण और महारथी हों।आन्तरिक और वाह्य शत्रुओं से युद्ध करने के लिए तथा देश की रक्षा के लिए राष्ट्र में क्षत्रिय वीरशाली होवे।

(3) **"दोग्ध्री धेनुः"** हमारे राष्ट्र में गौएँ प्रभूत दूध देने वाली हों।ताकि देश के नागरिकों का स्वास्थ्य हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ हो।गायों के दूध से दही घृत् आदि पञ्चामृत बनाकर अपने आराध्य देवों के पूजन कर प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति करते हैं।

(4) **"वोढाऽनड्वान्"** बैल भार उठाने वाले हों ताकि कृषिकर्म प्रचुरमात्रा में हो सके ,बैलगाडी आदि यानों से व्यपार कर राष्ट्र को सशक्त कर सकें।

(5) **"आशुः सप्तिः"** घोड़े शीघ्रगामी हों,ताकि युद्ध में शत्रुओं पर शीघ्रता से हमारे सैनिक प्रहार कर सके तथा अश्व के द्वारा राजदूत के रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान तक अपने सूचनाओं को पहुंचाया जा सकें।

(6) "**पुरन्धिर्योषा**" स्त्रियाँ नगर की रक्षिका हों। पुरुषवर्ग जब घर से बाहर प्रवास पर रहें तब उस समय स्त्रियाँ अपने ग्राम-घर की रक्षा करने में सामर्थ्यशाली होवे, पुरुषों के कन्धे से कन्धे मिलाकर राष्ट्र की रक्षा में सहयोगिनी हो सके।

(7) "**जिष्णूरथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्**" राष्ट्र के संवर्द्धन रूपी यज्ञ के हमसभी यजमानों के पुत्र-युवक सभा-सञ्चालन में कुशल, विजयशील, वीर और महारथी होवे। भारतमाता के युवक और युवतियों को इन उपदेशों को हृदयंगम कर लेना चाहिए। राष्ट्र-रक्षा का उत्तरदायित्व देश के युवक और युवतियों पर ही निर्भर है।

(8) "**निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु**" हमारी निश्चित कामना होने पर ही इच्छानुसार वृष्टि हो। अर्थात् अनावश्यक वृष्टि न होवे।

(9) "**फलवत्यो नऽओषधयः पच्यन्ताम्**" हमारे समस्त राष्ट्र में ओषधियाँ अर्थात् पेड-पौधें धान्य आदि हमारे लिए फलवती होकर पेडों में पकने तक सुरक्षित रहें। ।

(10) "**योगक्षेमो नः कल्पताम्**" हमारा योग-क्षेम सिद्ध हो। अप्राप्त की प्राप्ति का नाम है योग और प्राप्त वस्तु के रक्षण को क्षेम कहते हैं। भाव यह है कि राष्ट्र की आवश्यकताएँ सुगमता से पूर्ण होती रहें।

यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्

वैदिक प्रवचन कनिष्ठ सहायक की भूमिका का परिचय

१. चारों वेदों के ज्ञान जिसमें संसार के समस्त विद्याएं निहित है जो कि संस्कृतभाषा में उपलब्ध हैं, इसका सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद करके " वेदशास्त्र कथा-प्रवचन" पाठ्यक्रम के माध्यम से छात्रों को ज्ञान प्राप्त कराकर वेदार्थ चिन्तन द्वारा विकास क्षमता को उत्पन्न करना।

२. वैश्विक शान्ति के उपाय ,राष्ट्र की उन्नति एवं वैश्विक संस्कृति-सभ्यता के विकास में वेदशास्त्र-प्रवचन परम्परा का योगदान से छात्रों को परिचित कराना।

३. वैदिक वाङ्मय में (वेद की परिभाषा, धात्वर्थविचार, शाखा विचार, वेद वाङ्मय का स्वरूप, विषय विभाजन-संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषदों के साथ विशेषरूप से चारों वेदों के ब्राह्मण ग्रन्थों के संक्षिप्त ज्ञान से छात्रों को परिचय कराना।

४. वेदशास्त्र प्रवचन विषय को दार्ढ्य बनाने के लिए सामान्य संस्कृत ज्ञान के अन्तर्गत अमरकोष,व्याकरण सम्बन्धित सन्धि-समास, कारक एवं वैदिक श्रौत-स्मार्त आदि विषयों के सामान्यतया ज्ञान से छात्रों को अवगत कराना।

५. वेदों में पठित सूक्तों, संवादों, आख्यानों के अर्थों से छात्रों को पूर्णत: परिचित कराना एवं पठित आख्यानों के आधार पर प्रायोगिक रूप में छात्रों द्वारा "वेदशास्त्र प्रवचन" करने का अभ्यास करवाना।

६. वेदशास्त्र प्रवचन में भाषायी दक्षता हेतु संस्कृत सम्भाषण , हितोपदेश,नीतिशास्त्र के अन्तर्गत कथा आदि ज्ञान से छात्रों की भाषा समृद्ध करना एवं कथाओं में इन विषयों के सहयोग कौशल विकास को विकसित करना।

७. वैदिक वाङ्मय में जो आधुनिक ज्ञान है, विशेष रूप से विज्ञान, गणित, खगोलशास्त्र, ऋतुविज्ञान, रसायनविज्ञान, वास्तु, ज्योतिष, आयुर्वेद, तथा आधुनिक तकनीकि आदि ज्ञान से छात्रों को अवगत कराना एवं प्रायोगिक रूप में प्रवचन क्रम में इन विषयों पर लेख तैयार करना, कथा- व्याख्यान प्रस्तुत करना।

८.	छात्रों में श्रीमद्भगवद्गीता के सुनिश्चित अध्यायों के विषयों ,श्लोकों से परिचित कराना,वेदमन्त्र-श्लोक,मनुस्मृति आदि कण्ठस्थ कराना साथ ही प्रवचन -व्याख्यान एवं कौशल विकास की प्रवृत्ति को विकसित करना आदि उद्देश्य हैं।

महर्षिसान्दीपनिराष्ट्रियवेदविद्याप्रतिष्ठानम्, उज्जयिनी
यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्

इकाई 01

वेदशास्त्र का संक्षिप्त परिचय एवं वर्ण्यविषय

(क) वेद की परिभाषा-

- इष्टप्राप्ति-अनिष्टपरिहारयोः अलौकिकम् उपायं यः ग्रन्थः वेदयति स वेदः" (आचार्यसायणः)।
- विन्दन्ति जानन्ति विद्यन्ते भवन्ति विन्ते विचारयन्ति (ऋक्प्रातिशाख्यम्)
- अपौरुषेयं वाक्यं वेदः। (आचार्यसायणः)।
- पुरुषविद्याऽनित्यत्वात् कर्मसम्पत्तिर्मन्त्रो वेदे । (महर्षि यास्क)।
- विन्दन्ते लभन्ते सर्वे विद्यन्ते धर्मादयः पुरुषार्था यैः ते वेदाः। (स्वामी दयानन्दसरस्वती)

(ख) वेद परिचय एवं वेद शब्द का धात्वर्थ विचार-

वेद शब्द का अर्थ ही है ज्ञान और इस तरह वेद सकल ज्ञान-विज्ञान की निधि हैं। परा व अपरा दोनों विद्याओं का निरूपण करते हैं यही मनु का उद्घोष है कि सर्वज्ञानमयो हि सः' (सः) वह वेद (सर्वज्ञानमयः) सभी प्रकार के ज्ञान से युक्त हैं।आचार्य सायण ने वेद को अपौरूषय (किसी पुरुष द्वारा रचित न होकर अपितु परम पिता परमेश्वर द्वारा प्रदत्त उपहार)रूप में स्वीकार किया है साथ ही वेद के द्वारा इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट से रक्षा का अलौकिक उपाय का साधन भी बतलाया है, महर्षि यास्क ने पुरुषविद्या अर्थात लौकिकविद्या को अनित्य माना है,यह विद्या अनित्य होने से इसका फल भी अनित्य होता है, इस हेतु वेदमन्त्रों की सफल परम्परा परमेश्वर द्वारा सञ्चालित हुई है। महर्षि दयानन्द ने वेदों को समस्त सत्य विद्याओं का आधार कहा है। हमारा सम्पूर्ण जीवन, सकल क्रियाकलाप वेदों से ओतप्रोत है, कुछ भी वेद से बाहर नहीं है,वेद को ही सभी प्रमाणों से ऊपर माना गया है। इनकी उपयोगिता सार्वकालिक सार्वदेशिक सार्वजनीन है। इसलिए इन वेदों के अध्ययन पर बल दिया गया है और भौतिक विज्ञान के इस अत्यन्त समुन्नत युग में भी वेदों का ज्ञान उपयोगी, प्रासंगिक है और इन्हीं वेदों के कारण आज भी हमारी भारतीय संस्कृति संसार में पूजनीय है और भारत देश विश्वगुरु के महनीय पद पर प्रतिष्ठित है। जिस के द्वारा धर्म-अर्थ-काम-मोक्षादि-पुरुषार्थ-चतुष्टय की सिद्धि होती है वही वेद है।**इन विशिष्ट गुणों के भण्डार होने के कारण यूनेस्को द्वारा ऋग्वेद को विश्व का सर्वप्राचीन ग्रन्थ मानते हुए इसे वैश्विक सम्पत्ति रूप में स्वीकार किया है।** "विद् - ज्ञाने' धातु एवं घञ्-प्रत्यय से निष्पन्न यह वेद शब्द ज्ञान राशि, ज्ञान

का द्योतक है।व्याकरण के अनुसार शब्दार्थ का निर्णय करें तो वेद शब्द की निष्पत्ति चार धातुओं से निष्पन्न कर सकते हैं। यथा-

- **विद्यते**- विद् सत्तायाम् (दिवादि-गणे) विद्+घञ् प्रत्यय=**सत्ता-उपस्थिति अर्थ में**[वेद की सत्ता नित्य है।] ।
- **वेत्ति**- विद् ज्ञाने (अदादि-गणे) विद्+घञ् प्रत्यय =**ज्ञान अर्थ में**[ब्रह्माण्ड के समस्त ज्ञानभण्डार]
- **विन्ते**- विद् विचारणे (रुधादि-गणे) विद्+अच् प्रत्यय=**विचार अर्थ में** [वेद अनुसन्धेय ज्ञानराशि है।] ।
- **विन्दति**- विद्लृ लाभे (तुदादि-गणे) विद्लृ+घञ् प्रत्यय=**लाभ अर्थ में** [पुरुषार्थ चतुष्टय का लाभ] ।

वेद के पर्यायवाचीनाम -

(1) श्रुति (2) निगम (3) आगम (4) त्रयी (5) छन्द (6) स्वाध्याय (7) आम्नाय इत्यादि ।

(ग) <u>वेदों का महत्त्व-</u>

वेद भारतीय एवं विश्व साहित्य के उपलब्ध सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं, इनसे पहले का कोई भी अन्य ग्रन्थ अब तक प्राप्त नहीं हुआ है। इसीलिए कहा जाता है कि वेद सम्पूर्ण संसार के पुस्तकालयों की पहली पोथी हैं और भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के तो वेद प्राचीनतम एवं सर्वाधिक मूल्यवान् धरोहर हैं, हमारे स्वर्णिम अतीत को अच्छी तरह प्रकाशित करने वाले विमल दर्पण वेद ही हैं।

वेदों का स्वरूप-

वेद अपौरुषेय एवं नित्य है। भारतीय परम्परा के अनुसार वेदों की रचना किसी पुरुष द्वारा नहीं हुई है बल्कि हमारे पूर्वज ऋषियों ने अपनी सतत साधना -तपश्चर्या से इस वेद ज्ञानराशि का साक्षात्कार किया है और प्रत्यक्ष दर्शन करने के कारण इनकी संज्ञा 'ऋषि' है-ऋषिर्दर्शनात् (दर्शनात्) मन्त्रों के साक्षात्कार करने के कारण से इन्हें ऋषि कहते हैं। **"ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः"** (मन्त्रद्रष्टारः) मन्त्रों को देखने वाले (ऋषयः) ऋषिलोग युग के प्रारम्भ में हुए। **"साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः"** (साक्षात्कृतधर्माणः) धर्म-धारकतत्त्व सत्य का साक्षात्कार करने वाले (ऋषयः) ऋषि लोग (बभूवुः) युग के प्रारम्भ में हुए। वेदमन्त्र प्रत्यक्ष किए जाने के कारण वेद प्रतिपादित ज्ञान सर्वथा संदेहरहित, निर्दोष माना जाता है, अतएव वेद प्रामाणिक हैं। इनमें कुछ भी मिथ्या की सम्भावना नहीं है इसीलिए वेदों का स्वतः प्रामाण्य है। अपनी

पुष्टि प्रामाणिकता के लिए वेद किसी के आश्रित नहीं हैं। वेदों का सर्वाधिक महत्त्व इसी बात में है कि इनके द्वारा स्थूल-सूक्ष्म निकटस्थ दूरस्थ, अन्तर्हित व्यवहित, साथ ही भूत, वर्तमान, भविष्यत् त्रैकालिक समस्त विषयों का नि:संदिग्ध निश्चयात्मक ज्ञान होता है ,इसीलिए भगवान् मनु ने वेदों को सनातन चक्षु कहा है। यह अनुपम ज्ञाननिधि सुदूर प्राचीन काल से आज तक अपने उसी रूप में सुरक्षित चली आ रही है। इसमें एक भी अक्षर यहाँ तक कि एक मात्रा का भी जोड़ना-घटाना सम्भव नहीं है। आठ प्रकार के विशिष्ट पाठों से यह वेद पूर्णतः सुरक्षित है।

(घ) वेद का प्रयोजन एवं उपयोगिता

भौतिक विज्ञान के इस प्रकर्ष युग में वेद सर्वथा प्रासंगिक हैं। इनका अध्ययन सर्वतोभावेन-सभी प्रकार से उपयोगी है, क्योंकि मानव का सम्पूर्ण जीवन वेदों से ओतप्रोत है। मनुष्य का मुख्य प्रयोजन है सुख की प्राप्ति और इसकी सिद्धि में वेद सर्वथा उपकारक हैं। वेदों के सुप्रसिद्ध व्याख्याकार आचार्य सायण का कथन है कि इष्ट की प्राप्ति तथ अनिष्ट के परिहार के उपाय वेदों में ही मिलते हैं। इस तरह लौकिक अभ्युदय तथा निःश्रेयस दोनों प्रयोजनों की सिद्धि वेदों से होती है। वास्तव में वेद एक सुव्यवस्थित समन्वित जीवन परियोजना को प्रस्तुत करते हैं। केवल वर्तमान जीवन को सुखी बनाना ही उद्देश्य नहीं है, अपितु भावी जीवन को और अधिक सुखमय बनाना है, अमृतत्व की प्राप्ति करना है और वेद तो अमृतत्वसिद्धि के संविधान भण्डार हैं। मृत्यु के भय से छुटकारा दिलाकर वेद ही हमें अमरता का बोध कराते हैं।

अमृतस्यपुत्रा वयम् - हम सभी अमृतपुत्र हैं। इस प्रकार वेद परमसुखमयी आह्लादमयी जीवन दृष्टि प्रस्तुत करता है- **इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् । क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥** (ऋग्वेद 10.85.42) विवाह के पवित्र मांगलिक अवसर पर नव दम्पती को प्रदान किया गया यह शुभआशीर्वचन है। यह संसार सुखमय है। सुख प्राप्ति के लिए इसे छोड़ कर कहीं अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं है। सभी प्रकार का वास्तविक सच्चा सुख यहीं पर है। हे यजमानदम्पति! तुम दोनों (इह-एव) यहीं पर (स्तम्) रहो। (मा) नहीं (वियौष्टं) वियुक्त अलग होवो। (विश्वम् आयुः) सम्पूर्ण आयु 100 वर्ष की (वि अश्नुतम्) प्राप्त करो। (पुत्रैः) पुत्रों के साथ (नृप्तृभिः) पौत्रों के साथ (क्रीडन्तौ) खेलते हुए (मोदमानौ) प्रमुदित होते हुए (स्वे गृहे) अपने घर में (स्तम्) रहो। रुग्ण दुःखी-दीन होकर नहीं अपितु बलवान् बलिष्ठ अंगों से

बराबर कार्य करते हुए 100 वर्ष तक जीवित रहने की कामना की गई है। **जीवेम शरदः शतम्** (शरदः शतम्) सौ वर्ष तक (जीवेम) हम जीवित रहें।

भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवाः । भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिः। व्यशेम देवहितँय्यदायुः ।। (तै. आ. १)

(देवाः) हे देवगण (कर्णेभिः) कानों से (भद्रं) मंगल-शुभ (श्रृणुयाम) हम सुने। (यजत्राः) हे यजनीय-पूजनीय देवगण (अक्षिभिः) आँखों से (भद्र) मंगलशुभ (पश्येम) हम देखें। (स्थिरैः अंगै तनूभिः।) बलिष्ठ अंगो से युक्त शरीरों से (तुष्टुवांसः) प्रार्थना करते हुए (देहहितं) देवनिहित-निर्धारित (यद् आयुः) जो (100 वर्ष की) आयु है (वि-अशेम) हम अच्छी तरह प्राप्त करें अर्थात् इस अवधि में रोगी न होवें, बराबर निरोगी रहें। ऋषि कामना करता है कि **"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः"** (इह) इस लोक संसार में (कर्माणि) (निर्धारित) कार्यों को (कुर्वन् एव) करते हुए-सम्पन्न करते हुए (शतं समाः) सौ वर्ष तक (जिजीविषेत् -जीवित रहने की इच्छा करनी चाहिए और केवल 100 वर्ष तक ही नहीं, अपितु इससे भी अधिक जीवित रहने की बात कही गई है - भूयश्च शरदः शतात् (शतात् शरदः भूयः) और सौ वर्ष से अधिक जीवित रहें।

हमारे वैदिक ऋषि ने तो विश्वायु विश्वधात्री विश्वकर्मा, जबतक चाहे तब तक जीवित रहने की, सब कुछ धारणा करने की और सब कुछ करने की बात कही है। वास्तव में मानव-शरीर कर्मभूमि है और कर्म ही जीवन है तथा सिद्धिः कर्मजा-विजयश्री की प्राप्ति कर्म से होती है, इसलिए कर्म करने पर बल दिया गया है तथा कार्य को कभी भविष्य के लिए नहीं टालना चाहिए क्योंकि मनुष्य के कल की बात को कौन जानता है।

(ङ) वेदशाखा विचार

व्याकरण महाभाष्य में भगवान् पतञ्जलि ने ऋग्वेद की 21, यजुर्वेद की 101, सामवेद की 1000 तथा अथर्ववेद की 9 शाखाओं का उल्लेख किया है, इनके द्वारा उल्लिखित सभी 1131 शाखाएँ आज उपलब्ध नहीं हैं। वर्तमान में उपलब्ध प्रमुख शाखाएँ निम्नलिखित हैं।

(च) वेदों के विषय वर्गीकरण (संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक उपनिषत्)

वास्तव में सम्पूर्ण ज्ञानराशि को ही वेद कहते हैं। यह ज्ञाननिधि अतीव समृद्ध तथा विशाल है। इसलिए अध्ययन की सुविधा तथा कई अन्य दृष्टियों से इसका वर्गीकरण किया गया। भगवान् वेदव्यास ने इस एक ज्ञाननिधि का चार भागों में विभाजन करके अपने चार शिष्यों को पढ़ाया -

१. ऋग्वेद – पैल

२. यजुर्वेद - वैशम्पायन

३. सामवेद - जैमिनि

४. अथर्ववेद = सुमन्तु

इस तरह एक ही वेद ज्ञानसमूह को अध्ययन-अध्यापन की दृष्टि से विषय विभाग से चार भागों में विभक्त हो गया और इसी विभाजन के कारण वेदव्यास - वेदों को विभक्त किया) वादरायण का नाम वेदव्यास पड गया। पुनः इनके पैलादि शिष्यों ने परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए वेदव्यास अपने शिष्यों को उन-उन ऋग्वेदादि को पढ़ाया और इस प्रकार गुरु-शिष्य-परम्परा से एक ही वेद = ज्ञाननिधि असंख्य शाखा प्रशाखाओं में विभक्त हो गया। यज्ञ की दृष्टि से भी वेदों का विभाजन किया गया है। यज्ञ में मुख्यतः 4 पुरोहित या ऋत्विक होते हैं -

1. होता 2. अध्वर्यु 3. उद्गाता 4. ब्रह्मा

होता नामक ऋत्विक् यज्ञ में हव्यग्रहण करने के लिए इन्द्र-विष्णु-वरुणादि देवताओं को बुलाता है **"देवानाम् अह्वाता इति होता"**, एतदर्थ देवताओं का आवाहन मन्त्र ऋग्वेद में हैं। उद्गाता नामक ऋत्विक ऊँचे स्वरों के साथ मधुर गीति द्वारा देवों की प्रशंसा करता है**"ऊच्चैःस्वरैः गायति यः स उद्गाता"** । गेयमन्त्र सामवेद में हैं। अध्वर्युनामक ऋत्विक् यज्ञ सम्बन्धी विविध क्रियाकलापों को करता है यथा यज्ञवेदी का निर्माण, हवनसामग्री संकलनादि, **"अध्वरस्य-यज्ञस्य नेता इति अध्वर्युः"** इन कार्यों अनुष्ठानों का निरूपण यजुर्वेद में किया गया है। चतुर्थ ऋत्विक् ब्रह्मा यज्ञ का अधिष्ठाता होता है, अपने निरीक्षण एवं निर्देशन में वह यज्ञ को सम्पन्न कराता है। यह ऋक्-यजुस्-साम सभी वेदों का ज्ञाता होता है,**"सर्वं जानाति इति ब्रह्मा"** यद्यपि इसका अपना स्वतन्त्र अथर्ववेद है। विशेष रूप से इन पद्य,गद्य,गेय को क्रमशः ऋक् यजुस् साम के मन्त्रों का विनियोग यज्ञ में होता है और वेदत्रयी रूप में इन्हीं की प्रसिद्धि है।

उत्तरकाल में अथर्ववेद को यज्ञ को प्रधान ऋत्विक् ब्रह्मा के साथ जोड़ दिया गया इसीलिए अथर्ववेद ब्रह्मवेद के नाम से प्रसिद्ध है।

आचार्य आपस्तम्ब ने मन्त्र तथा ब्राह्मण दोनों भागों के सम्मिलित रूप को वेद संज्ञा से सम्बोधित किया है **(मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्)** । इस दृष्टि से वेद के दो प्रमुख भाग हैं –

वेद के दो प्रमुख भाग - (1) **मन्त्र भाग** (2) **ब्राह्मण भाग**

इनमें भी में मन्त्र भाग मूल है और इसी की व्याख्या ब्राह्मण भाग अपने मूल मन्त्र भाग की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। यह व्याख्या भी तीन दृष्टियों से की गई है -

ब्राह्मण भाग के विषयपरक तीन उपविभाग हैं - 1. ब्राह्मण 2. आरण्यक 3. उपनिषद्

इस प्रकार ब्राह्मणग्रन्थ -कर्मकाण्डपरक, आरण्यक -उपासनापरक, एवं उपनिषद् – ज्ञानपरक है ।

वेद के चार मुख्य विषयविभाग -१.मन्त्र ,२. ब्राह्मण ३. आरण्यक ४. उपनिषद्

वेद के चार मुख्य विषयविभाग के रूप में हम इस प्रकार समझते हैं। जिसमें मन्त्र भाग को संहिता कहते हैं और ये मुख्य रूप से चार वेद के चार संहिताएँ हैं -

1. ऋक् संहिता, 2. यजुर्वेद संहिता, 3. सामवेद संहिता, 4. अथर्ववेद संहिता

वस्तुतः मन्त्र भाग की ही व्याख्या ब्राह्मण भाग हैं, इसमें मन्त्र भाग में संहिताएँ हैं उतने ही व्याख्यानात्मक ब्राह्मण भाग भी हैं।

वेदों के उपवेद- ऋग्वेद का उपवेद वैद्यविद्या बोधक 'आयुर्वेद', यजुर्वेद का उपवेद शस्त्रविद्या विषयक 'धनुर्वेदः', सामवेद का उपवेद गानविद्या अवबोधक ' गान्धर्ववेदः' एवं अथर्ववेद का उपवेद शिल्पविद्या अवबोधक 'स्थापत्य वेद ' है।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक वेदविभाग के आचार्य, देवता, ऋत्विज , उपवेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषदादि विषय एवं कल्पवेदाङ्गविभाग के श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र तथा शुल्वसूत्र तथा प्रातिशाख्यादिग्रन्थ भी अलग अलग होते हैं। संक्षिप्त रूप में समझने के लिए चार्ट प्रस्तुत किया जा रहा है।

वेदसंहिता

- ऋग्वेदसंहिता
- यजुर्वेदसंहिता
- सामवेदसंहिता
- अथर्ववेदसंहिता

वेद	प्रथम अचार्य	देवता	ऋत्विज	उपवेद
ऋग्वेद	पैल	अग्नि	होता	आयुर्वेद
यजुर्वेद	वैशम्पायन	वायु	अध्वर्युः	धनुर्वेद
सामवेद	जैमिनि	आदित्य	उद्गाता	गान्धर्वेद
अथर्ववेद	सुमन्तु	सोम	ब्रह्मा	स्थापत्यादिवेद

वेद	शाखा	ब्राह्मण	आरण्यक	उपनिषद्	शिक्षाग्रन्थ
ऋग्वेद	आश्वलायन शाङ्खायन माण्डूकायन शाकल बाष्कल	ऐतरेय कौशीतकि/ शाङ्खायन	ऐतरेय कौशीतकि/ शाङ्खायन	ऐतरेय कौशीतकि/ शाङ्खायन बाष्कल	पाणिनीयशिक्षा स्वराङ्कुशा षोडशश्लोकी शैशिरीय आपिशलिशिक्षा
शुक्लयजुर्वेद	माध्यन्दिनी काण्व	माध्यन्दिनी शतपथ काण्व शतपथ	बृहदारण्यक	ईशावास्य बृहदराण्यक	याज्ञवल्क्यशिक्षा वासिष्ठी शिक्षा
कृष्णयजुर्वेद	तैत्तिरीय मैत्रायणी कठ कपिष्ठल	तैत्तिरीय मैत्रायणी कठब्राह्मण कपिष्ठलब्राह्मण	तैत्तिरीय मैत्रायणी	तैत्तिरीय मैत्रायणी श्वेताश्वतर कठोपनिषद्	भारद्वाज,व्यास

सामवेद	कौथुमी राणायणीय जैमिनीय	ताण्ड्य (प्रौढ, पञ्चविंश),षड्विंश, सामविधानम् आर्षेय, छान्दोग्य-मन्त्र ,देवताध्याय, संहितोपनिषद् ,वंश, जैमिनीय महाब्राह्मण,	तवल्कार जैमिनीय छान्दोग्य	छान्दोग्योपनिषद् केनोपनिषद्	नारदीयशिक्षा गौतमीशिक्षा लोमशीशिक्षा
अथर्ववेद	शौनक पैप्पलाद्	गोपथब्राह्मण	उपलब्ध नहीं	प्रश्नोपनिषद् मुण्डकोपनिषद् माण्डूक्योपनिषद्	माण्डूकी शिक्षा

वेद	**श्रौतसूत्र**	**गृह्यसूत्र**	**धर्मसूत्र**	**शुल्वसूत्र**
ऋग्वेद	शाङ्खायन आश्वलायन	आश्वलायन शाङ्खायन (कौषीतकि)	वासिष्ठ	नहीं है।
शुक्लयजुर्वेद	कात्यायन	पारस्कर	विष्णु	कात्यायन
कृष्णयजुर्वेद	बौधायन भारद्वाज बाधुल मानव आपस्तम्ब काठक सत्याषाढ वैखानस	बौधायन भारद्वाज मानव आपस्तम्ब काठक अग्निवेश्य हिरण्यकेशीय वैखानस	बौधायन वैखानस आपस्तम्ब	बौधायन आपस्तम्ब बाधूल

	वाराह	वाराह		
सामवेदः	लाट्यायन द्राह्यायण आर्षेयकल्प/मशक जैमिनीय	गोभिल खादिर द्राह्यायण जैमिनीय कौथुम	गौतमधर्मसूत्र	नहीं है
अथर्ववेद	वैतानश्रौतसूत्र	कौशिकगृह्यसूत्र	नहीं है	नहीं है

॥ब्राह्मणग्रन्थ का संक्षिप्त-स्वरूप॥

- ब्रह्म-ईश्वर को जिस कर्मविज्ञान विधि द्वारा जाना जाय वह **ब्राह्मण** ग्रन्थ कहलाता है।
- वास्त्विक में ब्राह्मणग्रन्थ कोई अन्य ग्रन्थ नहीं है अपितु यह वेद का ही दूसरा भाग है।
- ब्राह्मणग्रन्थ नामकरण के विषय में समझा जाता है कि जिस ज्ञानग्रन्थ के द्वारा ईश्वर -ब्रह्म को जाना जाए अथवा उस कर्मज्ञान की उपासना से ब्रह्मसदृश संस्कारवान होने से इस ग्रन्थ का नाम ब्राह्मण हुआ है।
- आपस्तम्बधर्मसूत्र के अनुसार मंत्र एवं ब्राह्मणभाग "**वेद**" कहलाता है। **"मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्"** ।
- जहाँ पर उपनिषद निर्गुण -सूक्ष्म ब्रह्म की उपासना प्रतिपादित करता है वही पर ब्राह्मणग्रन्थ सगुण मूर्त -कर्मरूपी ब्रह्म का निरूपण करता है ।
- यह मन्त्रभाग का अर्थवाचक एवं कर्म प्रतिपादक ग्रन्थ है।

  इस आशय को समझने के लिए ब्राह्मणग्रन्थ के विषयवस्तु का प्रतिपादन निम्न प्रकार से किया जा रहा है ।
- **ब्राह्मण ग्रन्थ के विषयवस्तु--:**
- मुख्यरूप से ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रतिपाद्य विषय है—यज्ञ एवं यज्ञ की प्रक्रिया का समुचित विवेचन।
- ब्राह्मणग्रन्थ के अनुसार यज्ञविज्ञान का दो प्रमुख भाग है—विधि एवं अर्थवाद ।

विधि— विधिभाग में यज्ञ प्रक्रिया का व्यवस्थित निरूपण किया गया है । जैसे – यज्ञ कौन सा मुहुर्त में हो तथा कहाँ और किस विधि से किया जाए । यज्ञ सम्पादन के लिए कितने ऋत्विक् चाहिएँ , यज्ञ में प्रत्येक ऋत्विक् का क्या कर्तव्य है , यज्ञ के लिए क्या-क्या सामग्री होनी चाहिए , यज्ञमण्डप का निर्माण , ऋत्विजों की दक्षिणा वितरण का स्वरूप इत्यादि ।

अर्थवाद –अर्थवाद शब्द से अभिप्राय है कि विधिकर्म की स्तुति या निन्दा परक अर्थ का प्रकाशन। यज्ञीय कर्मकाण्ड में विहित विधानों की अनेक प्रकार कि प्रशंसा की जाती है साथ ही निषिद्ध कर्मों की निन्दा की जाती है , ये सभी विषय अर्थवाद में समाहित है ।

ऋग्वेदीय ब्राह्मण

- ऋग्वेद के दो प्रमुख ब्राह्मणग्रन्थ उपलब्ध हैं। १."ऐतरेय"और"कौषीतकि" (शाङ्खायन)।
- **ऐतरेयब्राह्मण**- महीदास ऐतरेय नामक विद्वान इस ब्राह्मण के प्रवर्तक हैं। इसकी भाषाशैली संहिता की भाषा से मिलती है।
- इस ब्राह्मणग्रन्थ में ४० (चालीस) अध्याय हैं तथा पाँच-पाँच अध्यायों की आठ पँचिकाएँ हैं एवं प्रत्येक अध्याय में कण्डिका के रूप में पाठ परम्परा है।
- यह ब्राह्मणग्रन्थ यज्ञ में होतृनामक ऋत्विक् के समस्त कार्यकलापों का विवरण प्रस्तुत करता है।
- इस ग्रन्थ में वैदिक आख्यानों का प्रतिपादन अत्यन्त महनीय है।

यजुर्वेदीय ब्राह्मण

- **शतपथ ब्राह्मण-**:शुक्लयजुर्वेद के एक मात्र "शतपथ ब्राह्मण" सभी वेदों के ब्राह्मण ग्रन्थों में महत्त्वपूर्ण माना गया है।
- यह ग्रन्थ १०० अध्यायों में होने के कारण से इसका नाम शतपथ रखा गया है।यह यागानुष्ठान का सर्वोत्तम प्रतिपादक है।
- इसमें १४ काण्ड, १०० अध्याय, ६८ प्रपाठक, ४३८ ब्राह्मणभाग तथा (७६२४) सात हजार छः सौ चौबीस कण्डिकाएँ हैं।
- शतपथ ब्राह्मण के प्रथम काण्ड में दर्शपूर्णमास यज्ञ, द्वितीय में अग्निआधान इत्यादि, तृतीय एवं चतुर्थकाण्डों में सोम याग, पञ्चमकाण्ड में वाजपेय याग, तथा राजसूय याग का विवेचन है।

- षष्ठ से दशम काण्डों के अन्तर्गत चयन आदि का वर्णन है। अन्तिम चार काण्डों में उपनयन, स्वाध्याय, श्राद्ध विवेचन, एवं अश्वमेध यागादिकों का वर्णन है।
- चौदहवें काण्ड के अन्तभाग रूप में विशालकाय बृहदारण्यकोपनिषद् वर्णित है।
- इस ब्राह्मणग्रन्थ में विशेषतया गार्गी तथा याज्ञवल्क्य का शास्त्रार्थ, आर्ष शिष्य-परम्परा तथा सुप्रसिद्ध मनु एवं मत्स्य की कथा आती है ।

कृष्ण यजुर्वेदीय ब्राह्मण-

- **तैत्तिरीय ब्राह्मण-:** यह ब्राह्मणग्रन्थ कृष्ण यजुर्वेद के तैत्तिरीय शाखा से सम्बद्ध है।
- यह तीन काण्डों में विभक्त है। प्रथम व द्वितीय काण्ड में आठ-आठ प्रपाठक तथा तृतीय काण्ड में बारह प्रपाठक हैं।
- इन काण्डों में अग्न्याधान, अग्निहोत्र, नक्षत्रेष्टि आदि यज्ञों का विवरण दिया गया है।
- कृष्णयजुर्वेद के तैत्तिरीयशाखा से सम्बद्ध यह ब्राह्मण श्रौतयाग में अत्यन्त ही महत्वोपयोगी माना जाता है।

सामवेदीय ब्राह्मण -:

- सामवेद के कौथुमी एवं राणायनीय शाखा से सम्बद्ध ८ ब्राह्मणग्रन्थ हैं । १.ताण्ड्यमहाब्राह्मण,(प्रौढ. पञ्चविंश) २.षड्विंशब्राह्मण ३.सामविधानब्राह्मण, ४. देवताध्याय ५.आर्षेय, ६.छान्दोग्यमन्त्रब्रह्मण , ७.संहितोपनिषद् ब्राह्मण ८.वंशब्राह्मण।

१. **ताण्ड्यमहाब्राह्मण-**

- यह ग्रन्थ विशालकाय होने से "**महाब्राह्मण**"नाम से सुविख्यात है। श्रौतयाग की प्रारम्भिक भूमिका एवं सोमयाग का विशद निरूपण ताण्ड्यमहाब्राह्मण में किया गया है।
- सामवेद की ताण्डिशाखा से सम्बद्ध एवं **ताण्डि आचार्य** द्वारा रचित होने के कारण इसे **ताण्ड्यमहाब्राह्मण** कहा जाता है।
- इसमें **पच्चीस** अध्याय हैं, इसलिए इसे **पंचविंश महाब्राह्मण** भी कहते हैं। यज्ञीय अनुष्ठानों में उद्गाता के कार्यों का विशद विवेचन इन ग्रन्थों में किया गया है।
- इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय "**सोमयाग**" है।इसकी यह विशेषता है कि एक दिन से लेकर सहस्रवर्ष तक चलने वाले यज्ञों का विधान इसमें मिलता है।

- इसके प्रथम अध्याय में -**अग्निष्टोम** याग के सोमप्रवाक-दीक्षा वरण से लेकर उद्गाता के द्वारा पठनीय मन्त्रों का प्रयोग है, द्वितीय तृतीय में- स्तोमों की विष्टुतियों का वर्णन, ४-५ में-गवामयन याग का वर्णन,६ से ९ अध्याय तक ज्योतिष्टोम, उक्थ्य, एवं अतिरात्र वर्णन इसके १२वें से अग्रिम खण्डों में प्रायश्चित्त विधान का वर्णन है,१०-१५ में- द्वादशाहयागविधान,१६-१९ में -एकाहयाग का वर्णन ,२०-२२ में-अहीन याग का वर्णन, एवं २२ से २५ अध्याय तक सत्रयागों का विशद उल्लेख मिलता है।

२. **षड्विंशब्राह्मण-** यह ताण्ड्य का ही परिशिष्ट या सम्पूरक ग्रन्थ है, अत: इसको षड्विंश २६ वां अध्याय नाम से जानते हैं। इस ब्राह्मणग्रन्थ में कुल 6 अध्याय है।इसके १से ५ अध्याय तक अवशिष्ट सोमयागों का ही उल्लेख है, अंतिम षष्ठ अध्याय"**अद्भुतब्राह्मण**" नाम से जाना जाता है, क्योंकि इसमें **भूकम्प,अकाल,अतिवृष्टि,अनिष्टादि** विषयों से रक्षार्थ याग उपायों का प्रतिपादन किया गया है।

३. **सामविधानब्राह्मण-** यह ग्रन्थ सामवेद प्रकृतिगान संहिता के मन्त्रों का प्रयोग विधान बतलाता है। इसमें कुल 3 प्रपाठक एवं २५ अनुवाक है।

- इसके १से३ प्रपाठको में प्रजापति द्वारा सृष्टि निर्माण,सामप्रशंसा ,स्वाध्याय दर्शपूर्णमास, राज्याभिषेक, सामों के द्वारा काम्यप्रयोग, सामसूक्त एवं याग इत्यादि विधानों को प्रतिपादन किया गया है।

४. **आर्षेय ब्राह्मण-** यह ३ प्रपाठकों के ८२ खण्डों में विभाजित है,इसमें सामगान के ऋषियों का वर्णन है।

५. **देवताध्याय ब्राह्मण** - यह ४ खण्डों में पठित है, इसमें अनेक देवताओं एवं गायत्र्यादि छन्दों का विवेचन है।

६. **छान्दोग्य मन्त्र ब्राह्मण-** यह ग्रन्थ २ प्रपाठकों में विभाजित है, प्रत्येक प्रपाठक में ८-८ खण्ड है।यह सामवेदियों के गृहस्थजीवन के समस्त संस्कारों एवं कर्मकाण्डों को विवेचित करता है।

७ . **संहितोपनिषद ब्राह्मण-**इसमें कुल ५ खण्ड है। इस ग्रन्थ में ३ प्रकार के गान संहिता का वर्णन है। ये संहिता भेद गान पाठ के उदात्तादि उच्चारण रूप में समझी जाती है, संहिता से यहां पर सामसंहिता का भाव ग्रहण न करें।

८. **वंश ब्राह्मण-** इस ग्रन्थ में ३ खण्ड है, इसमें सामवेद की वंश परम्परा का विवेचन **ब्रह्मा** से **कश्यप** तक किया गया है।

- **जैमिनी महाब्राह्मण**-यह ग्रन्थ सामवेद के जैमिनीशाखा से सम्बद्ध है। यह अतिप्राचीन विशालकाय ग्रन्थ है। इसमें विशालतम ३ काण्ड है,प्रथम काण्ड में ३६४ मन्त्र खण्ड,द्वितीय काण्ड में ४४२ मन्त्र खण्ड,एवं तृतीयकाण्ड में ३८६ मन्त्र खण्ड, इस प्रकार कुल=११९२ मन्त्र अथवा खण्ड हैं।

अथर्ववेदीय ब्राह्मण

- अथर्ववेद का एक ही ब्राह्मण उपलब्ध है जो गोपथब्राह्मण कहलाता हैं।
- गोपथ के दो भाग हैं- पूर्व गोपथ और उत्तर गोपथ। पूर्व गोपथ में पाँच प्रपाठक और उत्तर गोपथ में छः प्रपाठक हैं।
- प्रपाठकों का विभाजन कण्डिकाओं में किया गया है। कुल (२५८) कण्डिकायें इस ग्रन्थ में हैं।
- इस ब्राह्मण के प्रारंभ में स्वभावतः अथर्ववेद की महिमा गाई गयी है। द्वितीय प्रपाठक में ब्रह्मचारी के नियमों का वर्णन है। अवशिष्ट प्रपाठकों में ऋत्विजों की दीक्षा, संवत्सर सत्र, अश्वमेध आदि यज्ञों का वर्णन है।

इकाई 02

व्याख्यान हेतु भाषायी दक्षता

अमरकोश

।। मङ्गलाचरणम् । ।।

यस्य ज्ञानदयासिन्धोरगाधस्यानघा गुणाः ।। १.०.१ ।।

सेव्यतामक्षयो धीराः स श्रिये चामृताय च ।। १.०.२ ।।

।। प्रस्तावना ।।

समाहृत्यान्यतन्त्राणि संक्षिप्तैः प्रतिसंस्कृतैः ।। १.०.३ ।।

सम्पूर्णमुच्यते वर्गैर्नामलिङ्गानुशासनम् ।। १.०.४ ।।

।। परिभाषा ।।

प्रायशो रूपभेदेन साहचर्याच्च कुत्रचित् ।। १.०.५ ।।

स्त्रीपुंनपुंसकं ज्ञेयं तद्विशेषविधेः क्वचित् ।। १.०.६ ।।

भेदाख्यानाय न द्वन्द्वो नैकशेषो न संकरः ।। १.०.७ ।।

कृतोऽत्र भिन्नलिङ्गानामनुक्तानां क्रमाद्दते ।। १.०.८ ।।

त्रिलिङ्ग्यां त्रिष्विति पदं मिथुने तु द्वयोरिति ।। १.०.९ ।।

निषिद्धलिङ्गं शेषार्थं त्वन्ताथादि न पूर्वभाक् ।। १.०.१० ।।

।। स्वर्गवर्गः ।।

(९स्वर्गनाम)

स्वरव्ययं स्वर्गनाकत्रिदिवत्रिदशालयाः ।। १.१.११ ।।

सुरलोको द्योदिवौ द्वे स्त्रियां क्लीबे त्रिविष्टपम् ।। १.१.१२ ।।

(२६देवनाम)

अमरा निर्जरा देवास्त्रिदशा विबुधाः सुराः ।। १.१.१३ ।।

सुपर्वाणः सुमनसस्त्रिदिवेशा दिवौकसः ।। १.१.१४ ।।

आदितेया दिविषदो लेखा अदितिनन्दनाः ।। १.१.१५ ।।

आदित्या ऋभवोऽस्वप्ना अमर्त्या अमृतान्धसः ।। १.१.१६ ।।

बर्हिर्मुखाः ऋतुभुजो गीर्वाणा दानवारयः ।। १.१.१७ ।।

वृन्दारका दैवतानि पुंसि वा देवताः स्त्रियाम् ।। १.१.१८ ।।

(९गणदेवतानाम)

आदित्यविश्ववसवस्तुषिताभास्वरानिलाः ।। १.१.१९ ।।

महाराजिकसाध्याश्च रुद्राश्च गणदेवताः ।। १.१.२० ।।

(१०देवयोनि)

विद्याधराप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्वकिंनराः ।। १.१.२१ ।।

पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः ।। १.१.२२ ।।

(१०असुरनाम)

असुरा दैत्यदैतेयदनुजेन्द्रारिदानवाः ।। १.१.२३ ।।

शुक्रशिष्या दितिसुताः पूर्वदेवाः सुरद्विषः ।। १.१.२४ ।।

(१८महात्मा बुद्धनाम)

सर्वज्ञः सुगतः बुद्धो धर्मराजस्तथागतः ।। १.१.२५ ।।

समन्तभद्रो भगवान्मारजिल्लोकजिज्जिनः ।। १.१.२६ ।।

षडभिज्ञो दशबलोऽद्वयवादी विनायकः ।। १.१.२७ ।।

मुनीन्द्रः श्रीघनः शास्ता मुनिः शाक्यमुनिस्तु यः ।। १.१.२८ ।।

(शाक्यमुनिस्तु यः से लेकर ७ नाम शाक्यमुनि का नाम,बुद्ध के अवान्तर भेद)

स शाक्यसिंहः सर्वार्थसिद्धः शौद्धोदनिश्च सः ।। १.१.२९ ।।

गौतमश्चार्कबन्धुश्च मायादेवीसुतश्च सः ।। १.१.३० ।।

(२० ब्रह्माजी का नाम)

ब्रह्मात्मभूः सुरज्येष्ठः परमेष्ठी पितामहः ।। १.१.३१ ।।

हिरण्यगर्भो लोकेशः स्वयंभूश्चतुराननः ।। १.१.३२ ।।

धाताब्जयोनिर्द्रुहिणो विरिञ्चिः कमलासनः ।। १.१.३३ ।।

स्त्रष्टा प्रजापतिर्वेधा विधाता विश्वसृग्विधिः ।। १.१.३४ ।।

(३९विष्णुनाम)

नाभिजन्माण्डजः पूर्वो निधनः कमलोद्भवः ।। १.१.३५ ।।

सदानन्दो रजोमूर्तिः सत्यको हंसवाहनः ।। १.१.३६ ।।

विष्णुर्नारायणः कृष्णो वैकुण्ठो विष्टरश्रवाः ।। १.१.३७ ।।

दामोदरो हृषीकेशः केशवो माधवः स्वभूः ।। १.१.३८ ।।

दैत्यारिः पुण्डरीकाक्षो गोविन्दो गरुडध्वजः ।। १.१.३९ ।।

पीताम्बरोऽच्युतः शार्ङ्गी विष्वक्सेनो जनार्दनः ।। १.१.४० ।।

उपेन्द्र इन्द्रावरजश्चक्रपाणिश्चतुर्भुजः ।। १.१.४१ ।।

पद्मनाभो मधुरिपुर्वासुदेवस्त्रिविक्रमः ।। १.१.४२ ।।

देवकीनन्दनः शौरिः श्रीपतिः पुरुषोत्तमः ।। १.१.४३ ।।

वनमाली बलिध्वंसी कंसारातिरधोक्षजः ।। १.१.४४ ।।

विश्वम्भरः कैटभजिद्विधुः श्रीवत्सलाञ्छनः ।। १.१.४५ ।।

(२ कृष्णपिता नाम)

पुराणपुरुषो यज्ञपुरुषो नरकान्तकः ।। १.१.४६ ।।

जलशायी विश्वरूपो मुकुन्दो मुरमर्दनः ।। १.१.४७ ।।

वसुदेवोऽस्य जनकः स एवानकदुन्दुभिः ।। १.१.४८ ।।

(१७बलरामनाम)

बलभद्रः प्रलम्बघ्नो बलदेवोऽच्युताग्रजः ।। १.१.४९ ।।

रेवतीरमणो रामः कामपालो हलायुधः ।। १.१.५० ।।

नीलाम्बरो रौहिणेयस्तालाङ्को मुसली हली ।। १.१.५१ ।।

संकर्षणः सीरपाणिः कालिन्दीभेदनो बलः ।। १.१.५२ ।।

(१९मदन-कामदेवनाम)

मदनो मन्मथो मारः प्रद्युम्नो मीनकेतनः ।। १.१.५३ ।।

कन्दर्पो दर्पकोऽनङ्गः कामः पञ्चशरः स्मरः ।। १.१.५४ ।।

शम्बरारिर्मनसिजः कुसुमेषुरनन्यजः ।। १.१.५५ ।।

पुष्पधन्वा रतिपतिर्मकरध्वज आत्मभूः ।। १.१.५६ ।।

(५कामदेव के धनुष नाम)

अरविन्दमशोकं च चूतं च नवमल्लिका ।। १.१.५७ ।।

नीलोत्पलं च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायकाः ।। १.१.५८ ।।

(५कामदेव के वाणों के नाम)

उन्मादनस्तापनश्च शोषणः स्तम्भनस्तथा ।। १.१.५९ ।।

संमोहनश्च कामश्च पञ्च बाणाः प्रकीर्तिताः ।। १.१.६० ।।

(४प्रद्युम्नपुत्र नाम)

ब्रह्मसूर्विश्वकेतुः स्यादनिरुद्ध उषापतिः ।। १.१.६१ ।।

(६लक्ष्मी नाम)

लक्ष्मीः पद्मालया पद्मा कमला श्रीर्हरिप्रिया ।। १.१.६२ ।।

इन्दिरा लोकमाता मा क्षीरोदतनया रमा ।। १.१.६३ ।।

भार्गवी लोकजननी क्षीरसागरकन्यका ।। १.१.६४ ।।

(विष्णु के शङ्ख,चक्र,गदा,खङ्ग,मणि इत्यादि सभी नाम)

शङ्खो लक्ष्मीपतेः पाञ्चजन्यश्चक्रं सुदर्शनः ।। १.१.६५ ।।

कौमोदकी गदा खङ्गो नन्दकः कौस्तुभो मणिः ।। १.१.६६ ।।

चापः शार्ङ्गं मुरारेस्तु श्रीवत्सो लाञ्छनं स्मृतम् ।। १.१.६७ ।।

अश्वाश्च शैव्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकाः ।। १.१.६८ ।।

सारथिर्दारुको मन्त्री ह्युद्धवश्चानुजो गदः ।। १.१.६९ ।।

(९ गरुडनाम)

गरुत्मान्गरुडस्तार्क्ष्यो वैनतेयः खगेश्वरः ।। १.१.७० ।।

नागान्तको विष्णुरथः सुपर्णः पन्नगाशनः ।। १.१.७१ ।।

(४८ शिवनाम)

शम्भुरीशः पशुपतिः शिवः शूली महेश्वरः ।। १.१.७२ ।।

ईश्वरः शर्व ईशानः शंकरश्चन्द्रशेखरः ।। १.१.७३ ।।

भूतेशः खण्डपरशुर्गिरीशो गिरिशो मृडः ।। १.१.७४ ।।

मृत्युञ्जयः कृत्तिवासाः पिनाकी प्रमथाधिपः ।। १.१.७५ ।।

उग्रः कपर्दी श्रीकण्ठः शितिकण्ठः कपालभृत् ।। १.१.७६ ।।

वामदेवो महादेवो विरूपाक्षस्त्रिलोचनः ।। १.१.७७ ।।

कृशानुरेताः सर्वज्ञो धूर्जटिर्नीललोहितः ।। १.१.७८ ।।

हरः स्मरहरो भर्गस्त्र्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः ।। १.१.७९ ।।

गङ्गाधरोऽन्धकरिपुः क्रतुध्वंसी वृषध्वजः ।। १.१.८० ।।

व्योमकेशो भवो भीमः स्थाणू रुद्र उमापतिः ।। १.१.८१ ।।

अहिर्बुध्न्योऽष्टमूर्तिश्च गजारिश्च महानटः ।। १.१.८२ ।।

(शिव के जटा,धनु, शिवपरिषदों आदि के नाम)

कपर्दोऽस्य जटाजूटः पिनाकोऽजगवं धनुः ।। १.१.८३ ।।

प्रमथाः स्युः पारिषदा ब्राह्मीत्याद्यास्तु मातरः ।। १.१.८४ ।।

(३ऐश्वर्यनाम)

विभूतिर्भूतिरैश्वर्यमणिमादिकमष्टधा ।। १.१.८५ ।।

(अणिमाआदि८सिद्धि नाम)

महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा ।। १.१.८६ ।।

प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्ट सिद्धयः ।। १.१.८७ ।।

(१७पार्वती नाम)

उमा कात्यायनी गौरी काली हैमवतीश्वरी ।। १.१.८८ ।।

शिवा भवानी रुद्राणी शर्वाणी सर्वमङ्गला ।। १.१.८९ ।।

अपर्णा पार्वती दुर्गा मृडानी चण्डिकाम्बिका ।। १.१.९० ।।

आर्या दाक्षायणी चैव गिरिजा मेनकात्मजा ।। १.१.९१ ।।

कर्ममोटी तु चामुण्डा चर्ममुण्डा तु चर्चिका ।। १.१.९२ ।।

(८गणेश नाम)

विनायको विघ्नराजद्वैमातुरगणाधिपाः ।। १.१.९३ ।।

अप्येकदन्तहेरम्बलम्बोदरगजाननाः ।। १.१.९४ ।।

(१७स्कन्दनाम)

कार्तिकेयो महासेनः शरजन्मा षडाननः ।। १.१.९५ ।।

पार्वतीनन्दनः स्कन्दः सेनानीरग्निभूर्गुहः ।। १.१.९६ ।।

बाहुलेयस्तारकजिद्विशाखः शिखिवाहनः ।। १.१.९७ ।।

षाण्मातुरः शक्तिधरः कुमारः क्रौञ्चदारणः ।। १.१.९८ ।।

(६नन्दी नाम)

शृङ्गी भृङ्गी रिटिस्तुण्डी नन्दिको नन्दिकेश्वरः ।। १.१.९९ ।।

(ऋभुक्षा तक ३५इन्द्र नाम)

इन्द्रो मरुत्वान्मघवा बिडौजाः पाकशासनः ।। १.१.१०० ।।

वृद्धश्रवाः सुनासीरः पुरुहूतः पुरन्दरः ।। १.१.१०१ ।।

जिष्णुर्लेखवर्षभः शक्रः शतमन्युर्दिवस्पतिः ।। १.१.१०२ ।।

सुत्रामा गोत्रभिद्वज्री वासवो वृत्रहा वृषा ।। १.१.१०३ ।।

बास्तोष्पतिः सुरपतिर्बलारातिः शचीपतिः ।। १.१.१०४ ।।

जम्भभेदी हरिहयः स्वाराण्नमुचिसूदनः ।। १.१.१०५ ।।

संक्रन्दनो दुश्च्यवनस्तुराषाण्मेघवाहनः ।। १.१.१०६ ।।

आखण्डलः सहस्राक्ष ऋभुक्षास्तस्य तु प्रिया ।। १.१.१०७ ।।

(पुलोमजा,शची,इन्द्राणी ३इन्द्रपत्नीनाम,तथा अमरावती इन्द्रनगरी आदिनाम)

पुलोमजा शचीन्द्राणी नगरी त्वमरावती ।। १.१.१०८ ।।

हय उच्चैःश्रवा सूतो मातलिर्नन्दनं वनम् ।। १.१.१०९ ।।

स्यात्प्रासादो वैजयन्तो जयन्तः पाकशासनिः ।। १.१.११० ।।

(४ऐरावत नामक हाथी के नाम)

ऐरावतोऽभ्रमातङ्गैरावणाभ्रमुवल्लभाः ।। १.१.१११ ।।

(१०वज्र नाम)

ह्रादिनी वज्रमस्त्री स्यात्कुलिशं भिदुरं पविः ।। १.१.११२ ।।

शतकोटिः स्वरुः शम्बो दम्भोलिरशनिर्द्वयोः ।। १.१.११३ ।।

(२विमान के नाम) तथा नारद,तम्बुरु,भरत,पर्वत,देवलादि देवऋषिनाम)

व्योमयानं विमानोऽस्त्री नारदाद्याः सुरर्षयः ।। १.१.११४ ।।

(२ देवसभा,३ अमृतनाम)

स्यात्सुधर्मा देवसभा पीयूषममृतं सुधा ।। १.१.११५ ।।

(४ स्वर्ग की गङ्गा)

मन्दाकिनी वियद्गङ्गा स्वर्णदी सुरदीर्घिका ।। १.१.११६ ।।

(५ स्वर्णपर्वत नाम)

मेरुः सुमेरुर्हेमाद्री रत्नसानुः सुरालयः ।। १.१.११७ ।।

(५देववृक्ष नाम)

पञ्चैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः ।। १.१.११८ ।।

सन्तानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम् ।। १.१.११९ ।।

(वैधात्र तक २सनकादि,६अश्विनीकुमार नाम)

सनत्कुमारो वैधात्रः स्वर्वैद्यावश्विनीसुतौ ।। १.१.१२० ।।

नासत्यावश्विनौ दस्रावाश्विनेयौ च तावुभौ ।। १.१.१२१ ।।

(२नाम स्वर्ग अप्सराओं के)

स्त्रियां बहुष्वप्सरसः स्वर्वेश्या उर्वशीमुखाः ।। १.१.१२२ ।।

(हाहा,हूहू आदि देवगन्धर्वनाम)

हाहा हूहूश्चैवमाद्या गन्धर्वास्त्रिदिवौकसाम् ।। १.१.१२३ ।।

(शुचिरप्पित्तम् तक ३४अग्नि के नाम)

अग्निर्वैश्वानरो वह्निर्वीतिहोत्रो धनञ्जयः ।। १.१.१२४ ।।

कृपीटयोनिर्ज्वलनो जातवेदास्तनूनपात् ।। १.१.१२५ ।।

बर्हिः शुष्मा कृष्णवर्त्मा शोचिष्केश उषर्बुधः ।। १.१.१२६ ।।

आश्रयाशो बृहद्भानुः कृशानुः पावकोऽनलः ।। १.१.१२७ ।।

रोहिताश्वो वायुसखः शिखावानाशुशुक्षणिः ।। १.१.१२८ ।।

हिरण्यरेता हुतभुग्दहनो हव्यवाहनः ।। १.१.१२९ ।।

सप्तार्चिर्दमुनाः शुक्रश्चित्रभानुर्विभावसुः ।। १.१.१३० ।।

(और्ववस्तु से वडवानल तक ३ वाडवाग्नि-समुद्र की अग्नि के नाम)

शुचिरप्पित्तमौर्वस्तु वाडवो वडवानलः ।। १.१.१३१ ।।

(अग्नि के ज्वाला-प्रकाश के ५ नाम)

वह्नेर्द्वयोर्ज्वालकीलावर्चिर्हेतिः शिखाः स्त्रियाम् ।। १.१.१३२ ।।

(स्फुलिङ्ग,अग्निकण तक अग्निकण एवं संताप ,संज्वर अग्नि ताप के नाम)

त्रिषु स्फुलिङ्गोऽग्निकणः संतापः संज्वरः समौ ।। १.१.१३३ ।।

उल्का स्यान्निर्गतज्वाला भूतिर्भसितभस्मनी ।। १.१.१३४ ।।

क्षारो रक्षा च दावस्तु दवो वनहुताशनः ।। १.१.१३५ ।।

(१४यमराज के नाम)

धर्मराजः पितृपतिः समवर्ती परेतराट् ।। १.१.१३६ ।।

कृतान्तो यमुनाभ्राता शमनो यमराड्यमः ।। १.१.१३७ ।।

कालो दण्डधरः श्राद्धदेवो वैवस्वतोऽन्तकः ।। १.१.१३८ ।।

(१५ राक्षस के नाम)

राक्षसः कौणपः क्रव्यात्क्रव्यादोऽस्रप आशरः ।। १.१.१३९ ।।

रात्रिञ्चरो रात्रिचरः कर्बुरो निकषात्मजः ।। १.१.१४० ।।

यातुधानः पुण्यजनो नैर्ऋतो यातुरक्षसी ।। १.१.१४१ ।।

(५ वरुण के नाम)

प्रचेता वरुणः पाशी यादसांपतिरप्पतिः ।। १.१.१४२ ।।

(प्रभञ्जनाः तक २० वायु के नाम)

श्वसनः स्पर्शनो वायुर्मातरिश्वा सदागतिः ।। १.१.१४३ ।।

पृषदश्वो गन्धवहो गन्धवाहानिलाशुगाः ।। १.१.१४४ ।।

समीरमारुतमरुत्जगत्प्राणसमीरणाः ।। १.१.१४५ ।।

नभस्वद्वातपवनपवमानप्रभञ्जनाः ।। १.१.१४६ ।।

प्रकम्पनो महावातो झञ्झावातः सवृष्टिकः ।। १.१.१४७ ।।

(शरीर में रहने वाले वायु के ५ नाम)

प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ च वायवः ।। १.१.१४८ ।।

(रंहः से लेकर जवःतक वेग के ५ नाम)

शरीरस्था इमे रंहस्तरसी तु रयः स्यदः ।। १.१.१४९ ।।

(११ त्वरित -शीघ्रता के नाम)

जवोऽथ शीघ्रं त्वरितम् लघु क्षिप्रमरं द्रुतम् ।। १.१.१५० ।।

सत्वरं चपलं तूर्णमविलम्बितमाशु च ।। १.१.१५१ ।।

(अजस्रम् तक ९ नित्य-स्थाई के नाम)

सततानारताश्रान्तसंततताविरतानिशम् ।। १.१.१५२ ।।

(अतिशय से लेकर दृढम् तक अतिशय(आधिक्यता) के १४नाम)

नित्यानवरताजस्रमप्यथातिशयो भरः ।। १.१.१५३ ।।

अतिवेलभृशात्यर्थातिमात्रोद्गाढनिर्भरम् ।। १.१.१५४ ।।

तीव्रैकान्तनितान्तानि गाढबाढदृढानि च ।। १.१.१५५ ।।

क्लीबे शीघ्राद्यसत्त्वे स्यात्त्रिष्वेषां सत्त्वगामि यत् ।। १.१.१५६ ।।

(१७ कुबेर का नाम)

कुबेरस्त्र्यम्बकसखो यक्षराड्गुह्यकेश्वरः ।। १.१.१५७ ।।

मनुष्यधर्मा धनदो राजराजो धनाधिपः ।। १.१.१५८ ।।

किन्नरेशो वैश्रवणः पौलस्त्यो नरवाहनः ।। १.१.१५९ ।।

यक्षैकपिङ्गैलविलश्रीदपुण्यजनेश्वराः ।। १.१.१६० ।।

(कुबेर के उद्यान पुत्र आदि का नाम)

अस्योद्यानं चैत्ररथं पुत्रस्तु नलकूबरः ।। १.१.१६१ ।।

कैलासः स्थानमलका पूर्विमानं तु पुष्पकम् ।। १.१.१६२ ।।

स्यात्किन्नरः किम्पुरुषस्तुरङ्गवदनो मयुः ।। १.१.१६३ ।।

(९ निधि के नाम)

निधिर्ना शेवधिर्भेदाः पद्मशङ्खादयो निधेः ।। १.१.१६४ ।।

महापद्मश्च पद्मश्च शङ्खो मकरकच्छपौ ।। १.१.१६५ ।।

मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नव ।। १.१.१६६ ।।

॥इति स्वर्गवर्गः॥

(ख) अथ संज्ञाप्रकरणम् (लघुसिद्धान्तकौमुदी)

अथ माहेश्वाराणि सूत्राणि

१.अ इ उ ण् २. ऋ ऌ क् ३. ए ओ ङ् ४. ऐ औ च् ५. ह य व र ट् ६. ल ण् ७. ञ म ङ ण न म् ८. झ भ ञ् ९. घ ढ ध ष् १०. ज ब ग ड द श् ११. ख फ छ ठ थ च ट त व् १२. क प य् १३. श ष स र् १४. ह ल्

(**भावार्थ**- यह चौदह सूत्र शिव-महेश्वर से प्राप्त होने के कारण से इसका नाम **माहेश्वर** सूत्र हुआ है।इन सभी प्रतिसूत्रों के अन्तिम इत्संज्ञक वर्णों(ण्,क्,ङ्,च्,ट्,ण्,म्,ञ्,ष्,श्,व्,य्,र्,ल्) को छोडकर शेष मूल वर्णों की कुल संख्या ४२ हैं। इन ४२ वर्णों को मुख्यरूप से दो प्रकार के वर्णों में विभाजित किया गया है जिन्हें हम **स्वर** और **व्यञ्जन** वर्ण के नाम से जानते हैं। इनमें प्रारम्भ के ९ वर्ण स्वरवर्ण,एवं शेष सभी ३३वर्ण व्यञ्जन वर्ण कहलाते हैं।स्वर वर्ण को **अच् प्रत्याहार** एवं व्यञ्जन वर्ण को **हल् प्रत्याहार** के नाम से भी जाना जाता है।

माहेश्वर सूत्र के लेखन पर यदि ध्यान दिया जाए तो स्वर वर्णों में क्रमानुसार प्रारम्भ के अ,इ,उ ऋ, स्वतंत्र स्वर अथवा समानाक्षर स्वर तथा ए=(अ+इ),ओ=(अ+उ),ऐ=(अ+ए),औ=(अ+ओ) संयुक्त अथवा सन्ध्यक्षर स्वर(मिले हुए वर्ण) कहलाते हैं। इसी प्रकार हल् प्रत्याहार में सर्वप्रथम य,व,र्,ल् अन्तस्थ वर्ण अथवा यण् प्रत्याहार, शेष वर्ण ञ म ङ ण न आदि क्रमानुसार पहले वर्गों के पञ्चम,चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय, प्रथम वर्ण इनको स्पर्शवर्ण कहते हैं, अन्त में श,ष,ह को ऊष्मवर्ण अथवा शल् प्रत्याहार पढा जाता है।

इति माहेश्वाराणि सूत्राण्यणादि संज्ञार्थानि, एषामन्त्या इतः। हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः,लणमध्ये त्वित्संज्ञकः।

भावार्थ- यह माहेशवर सूत्र अणादि(अण्,अच् आदि)सभी ४२ प्रत्याहारों के निर्माण हेतु है।इन १४ सूत्रों के अन्तिम सभी व्यञ्जन वर्णों की इत् संज्ञा (इत् नाम) हो जाता है।हकारादि व्यञ्जनवर्णों में जो “अ”

स्वर का उच्चारण सुनाइ देता है यह केवल उच्चारण मात्र के लिए समझा जाए, लेखन में ये व्यञ्जनवर्ण बिना स्वर के अर्ध(आधे) ही लिखे जाएंगे। अर्थात यण् प्रत्याहार लिखते समय य्,व्,र्,ल् इस प्रकार आधे ही वर्ण का लेखन करे। परन्तु लण् सूत्र के ल वर्ण में जो "अ" का उच्चारणप्रयोग है वह अ वर्ण इत् संज्ञक समझा जाए। तभी रल् अथवा रँ प्रत्याहार बन पाएगा। ल् की इत्संज्ञा होकर लोप होने पर रल्=र ।

हलन्त्यम्॥ (ल.सि.कौ.-१ = पा-१,३.३)

उपदेशेऽन्त्यं हलित्स्यात्। उपदेश आद्योच्चारणम्। सूत्रेष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र॥

भावार्थ-

उपदेशेऽन्त्यं हलित्स्यात्-उपदेश अवस्था(धातु, सूत्र, गण, उणादि,वाक्य, लिङ्ग, अनुशासन, आगम, प्रत्यय,आदेश) इनमें विद्यमान अन्तिम हल् -व्यञ्जनवर्ण की इत् संज्ञा होती है।

उपदेश आद्योच्चारणम्-पाणिनी,कात्यायन,पतञ्जलि इन तीनों मुनियों के आदि-प्रथम उच्चारण को उपदेश कहते हैं।

सूत्रेष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र- मूलसूत्रों में जो पद दिखाइ नहीं देता है वह पद किसी अन्य समीपवर्ती सूत्र से अनुवर्तन(ग्रहण) कर लेनी चहिए। यह नियम सभी सूत्रों में जान लेनी चहिए। **उदाहरण**-हलन्त्यम् सूत्र के वृत्ति में उपदेशे और इत् पद मूल सूत्र में पठित नहीं है, इस प्रकार यहां पर सन्देह उत्पन्न होता है कि ये दोनों कहा से प्राप्त हुए? , उपर्युक्त सूत्र के नियमानुसार "उपदेशेऽज्ननुनासिक इत्" इस समीपवर्ती सूत्र से हलन्त्यम् सूत्र के वृत्ति में उपदेशे और इत् पद का अनुवर्तन हुआ है।

अदर्शनं लोपः॥ (ल.सि.कौ.-२ = पा.१,१.६०)

प्रसक्तस्यादर्शनं लोपसंज्ञं स्यात्।

भावार्थ- विद्यमान(प्रत्यक्ष उपस्थित) वर्ण का दिखाई नहीं देना लोप संज्ञा कहलाती है।

तस्य लोपः॥ (ल.सि.कौ.३ = पा.१.३.९)

तस्येतो लोपःस्यात्। णादयोऽणाद्यर्थाः।

जिन वर्णों की इत् संज्ञा होती है उन सभी वर्णों का अदर्शनंलोप: से लोप संज्ञा होकर तस्यलोप:सूत्र से लोप कार्य होता है।

आदिरन्त्येन सहेता॥ (ल.सि.कौ.४ = पा.१,१.७१)

अन्त्येनेता सहित आदिर्मध्यगानां स्वस्य च संज्ञा स्यात् यथाणिति अ इ उ वर्णानां संज्ञा। एवमच् हल् अलित्यादयः॥

भावार्थ- अण् आदि प्रत्याहार निर्माणकार्य में अण् प्रत्याहार में अन्तिम इत् संज्ञक वर्ण(ण्) के साथ आदिवर्ण (अ) और मध्यगामीवर्ण (इ,उ) तथा स्वयं अण् प्रत्याहार का बोध होगा। इसमें अन्तिम ण् वर्ण का इत् संज्ञा होकर लोप होने से अण् प्रत्याहार में अ,इ,उ का ही ग्रहण होगा।

ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः॥ (ल.सि.कौ.५ = पा.१,२.२७).

उश्च ऊश्च ऊ३श्च वः वां काल इवकालो यस्य सोऽच् क्रमाद् ह्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञः स्यात्। स प्रत्येकमुदात्तादि भेदेन त्रिधा।

भावार्थ-उकार का जो उच्चारण काल(समय) क्रम से उ,ऊ,ऊऽ३ इस प्रकार जिन स्वरों का समान उच्चरित हो वे क्रमशः ह्रस्व,दीर्घ,प्लुत संज्ञा वाले कहलाते हैं। ये क्रमशः एकमात्रिक,द्विमात्रिक,एवं त्रिमात्रिक माने जाते हैं।

उच्चैरुदात्तः॥ (ल.सि.कौ.६ = पा.१,२.२९)

ताल्वादिषु सभागेषु स्थानेषूर्ध्वभागेषु निष्पन्नोऽजुदात्तसंज्ञःस्यात्।

भावार्थ-मुख में तालु आदि उच्चारणस्थानों के ऊपरी भाग से जिन स्वर वर्णों का उचारण हो वे **उदात्तसंज्ञा** वाले वर्ण कहे जाते हैं।

नीचैरनुदात्तः॥ (ल.सि.कौ._७ = पा.१,२.३०)

ताल्वादिषु सभागेषु स्थानेष्वधोभागे निष्पन्नोऽजनुदात्तसंज्ञःस्यात्।

भावार्थ-मुख में तालु आदि उच्चारणस्थानों के नीचे भाग से जिन स्वर वर्णों का उचारण हो वे **अनुदात्तसंज्ञा** वाले वर्ण कहे जाते हैं।

समाहारः स्वरितः॥ (ल.सि.कौ._८ = पा.१,२.३१)

उदात्तानुदात्तत्वे वर्णधर्मौ समाह्रियेते यस्मिन् सोऽच् स्वरितसंज्ञःस्यात्।

भावार्थ-मुख में तालु आदि उच्चारणस्थानों के ऊपरी एवं नीचली भाग का समानधर्म(मध्यमभाग) से जिन स्वर वर्णों का उचारण हो वे **स्वरितसंज्ञा** वाले वर्ण कहे जाते हैं।

स नवविधोऽपि प्रत्येकमनुनासिकत्वाननुनासिकत्वाभ्यां द्विधा॥

इस तरह ह्रस्व,दीर्घ,प्लुत भेद एवं उदात्त,अनुदात्त,स्वरित भेद से वे सभी स्वर वर्ण ९,९ प्रकार के होते हैं। साथ ही वे सभी ९ प्रकार होने के पश्चात् पुनः अनुनासिक,एवं अननुनासिक भेद से दो दो प्रकार के होते हैं।इस तरह अ,इ,उ,ऋ आदि स्वरों के १८,१८ भेद होते हैं।

मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः॥ (ल.सि.कौ._९ = पा.१,२.८)

मुखसहितनासिकयोच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिकसंज्ञःस्यात्।

भावार्थ-मुख सहित नासिका(नाक) से उच्चार्यमान वर्णों की अनुनासिक संज्ञा होती है।

तदित्थम् - अ इ उ ऋ एषां वर्णानां प्रत्येकमष्टादश भेदाः।

भावार्थ-जिन वर्णों के उदात्तादि ह्रस्वादि मिलकर ९ भेद हो चुके थे वे अनुनासिक,एवं अननुनासिक इन दो भेद होने से अ,इ,उ,ऋ आदि स्वरों के १८,१८ भेद होते हैं।

ऌवर्णस्य द्वादश ,तस्य दीर्घाभावात्। **भावार्थ** -(ऌ वर्ण का १२ भेद होता है,इसका दीर्घ नहीं होता है।

एचामपि द्वादश, तेषां ह्रस्वाभावात्॥ **भावार्थ** -(एच् प्रत्याहार(ए ओ ऐ औ) इनके १२ भेद होते हैं क्योंकि इनके ह्रस्व का अभाव होता है।

तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्॥ (ल.सि.कौ._१० = पा.१,१.८)

ताल्वादिस्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नश्चेत्येतद्वयं यस्य येन तुल्यं तन्मिथः सवर्णसंज्ञं स्यात्।

भावार्थ-जिन वर्णों के तालु आदि उच्चारण स्थान एवं अभ्यन्तर प्रयत्न ये दोनों एक हो वे आपस में सवर्णवर्ण संज्ञक कहलाते हैं।

(ऋऌवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्)। **भावार्थ** -ऋ,एवं ऌ ये दोनों वर्ण आपस में स्वतः सवर्णी होते हैं।

अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः।

भावार्थ -अवर्ण-अ आ आऽ३ ,कु=कवर्ग=क,ख,ग,घ,ङ, ह वर्ण एवं विसर्ग इन सबका उच्चारण स्थान कण्ठ होता है।

इचुयशानां तालु।

भावार्थ -इ वर्ण -इ ई,ईऽ३,चु=चवर्ग=च,छ,ज,झ,ञ ,यवर्ण एवं श वर्ण इन सभी वर्णों का उच्चारण स्थान तालु होता है।

ऋटुरषाणां मूर्धा।

भावार्थ -ऋ वर्ण -ऋ ऋ ऋ३ ,टु=टवर्ग=ट,ठ,ड,ढ,ण ,र वर्ण एवं ष वर्ण इन सभी वर्णों का उच्चारण स्थान मूर्धा होता है।

ऌतुलसानां दन्ताः।

भावार्थ -ऌवर्ण -ऌ ऌ३,तु=तवर्ग=त,थ,द,ध,न ,लवर्ण एवं स वर्ण इन सभी वर्णों का उच्चारण स्थान दन्त(दाँत) होता है।

उपूपध्मानीयानामोष्ठौ।

भावार्थ -उ ऊ ऊ३ पू=पवर्ग(प,फ,ब,भ,म) और उपधमानीय वर्ण(:प:फ) इन सभी वर्णों का उच्चारण स्थान ओष्ठ होता है।

ञमङणनानां नासिका च।

भावार्थ -ञ,म,ङ,ण,न इन सभी वर्णों का उच्चारणस्थान नासिका (नाक) भी होता है।

एदैतोः कण्ठतालु।

भावार्थ -एत् (ए) और ऐत्(ऐ) इन दो वर्णों का उच्चारण स्थान कण्ठतालु होता है।

ओदौतोः कण्ठोष्ठम्।

भावार्थ -ओत् (ओ) और औत्(औ) इन दो वर्णों का उच्चारण स्थान कण्ठ ओष्ठ होता है।

वकारस्य दन्तोष्ठम्।

भावार्थ -वकार(व वर्ण) का उच्चारण स्थान दन्तोष्ठ होता है।

जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्।

भावार्थ -जिह्वामूलीय वर्ण (ᳵकᳵख) का उच्चारण स्थान जिह्वामूल होता है।

नासिकानुस्वारस्य।

भावार्थ -अनुस्वार वर्ण का उच्चारण स्थान नासिका(नाक)होता है।

यत्नो द्विधा - आभ्यन्तरो बाह्यश्च। आद्यः पञ्चधा - स्पृष्टेषत्स्पृष्टेषद्विवृतविवृतसंवृत भेदात्।

भावार्थ -यत्न (वर्णों के उच्चारण करने का प्रयत्न-प्रयास) दो प्रकार के होते हैं। १.आभ्यन्तर २.बाह्य । यहाँ पर आभ्यन्तर का मतलब उच्चारण के समय लगने वाले आन्तरिक वायु एवं बाह्य का मतलब बाहरी वायु प्रयास से होता है। इन दोनों में जो आदि आभ्यन्तर प्रयत्न है इसके ५ भेद होते हैं। जिनके नाम क्रमशः १.स्पृष्ट,२.ईषत् स्पृष्ट,३.ईषत् विवृत,४.विवृत् ५.संवृत् होते हैं।

तत्र स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शानाम्।

भावार्थ -इनमें स्पर्श वर्णों का **स्पृष्ट** प्रयत्न होता हैं।

ईषत्स्पृष्टमन्तःस्थानाम्।

भावार्थ -अन्तस्थ वर्णों का **ईषत् स्पृष्ट** प्रयत्न होता हैं।

ईषद्विवृतमूष्मणाम्।

भावार्थ -ऊष्म वर्णों का **ईषत् विवृत्** प्रयत्न होता हैं।

विवृतं स्वराणाम्।

भावार्थ -स्वर वर्णों का **विवृत** प्रयत्न होता हैं।

ह्रस्वस्यावर्णस्य प्रयोगे संवृतम्।

भावार्थ -ह्रस्व अ वर्ण का प्रयोग अवस्था में **संवृत** प्रयत्न होता हैं।

प्रक्रियादशायां तु विवृतमेव।

भावार्थ -परन्तु ह्रस्व अ वर्ण का प्रक्रिया अवस्था में विवृत् ही प्रयत्न होता है।

बाह्यप्रयत्नस्त्वेकादशधा - विवारः संवारः श्वासो नादो घोषोऽघोषोऽल्पप्राणोमहाप्राण उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्चेति।

भावार्थ -बाह्य प्रयत्न के ११ भेद होते हैं ये क्रमशः १.विवार २.संवार ३.श्वास ४.नाद ५.घोष ६.अघोष ७. अल्पप्राण ८.महाप्राण ९.उदात्त १०.अनुदात्त ११.स्वरित

खरो विवाराः श्वासा अघोषाश्च। हशः संवारा नादा घोषाश्च।

भावार्थ -खर् प्रत्याहार के अन्तर्गत आने वाले वर्णों का बाह्य प्रयत्न विवार,श्वास,अघोष होता है। इसी प्रकार हश् प्रत्याहार के अन्तर्गत आने वाले वर्णों का बाह्य प्रयत्न संवार,नाद,घोष होता है।

वर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमा यणश्चाल्पप्राणाः। वर्गाणां द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः।

भावार्थ -वर्गों के प्रथम तृतीय,पञ्चम एवं यण् प्रत्याहार के अन्तर्गत पठित वर्णों का बाह्य प्रयत्न अल्पप्राण होता है। इसी प्रकार वर्गों के द्वितीय, चतुर्थ, एवं शल् प्रत्याहार के अन्तर्गत पठित वर्णों का बाह्य प्रयत्न महाप्राण होता है।

कादयो मावसानाः स्पर्शाः। यणोऽन्तःस्थाः। शल ऊष्माणः। अचःस्वराः।

भावार्थ -कवर्ग के **क** से लेकर पवर्ग के **म** तक पठित सभी २५ वर्णों को **स्पर्श** वर्ण कहते हैं। यण् प्रत्याहार के अन्तर्गत पठित वर्णों को **अन्तस्थ** वर्ण कहते हैं। शल् प्रत्याहार के अन्तर्गत पठित वर्णों को **ऊष्म** वर्ण कहते हैं। अच् प्रत्याहार के अन्तर्गत पठित वर्णों को **स्वर** वर्ण कहते हैं।

×क×ख इति कखाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृशो जिह्वामूलीयः। ×प×फ इति पफाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृश उपध्मानीयः। अं अः इत्यचः परावनुस्वारविसर्गौ॥

भावार्थ -×क×ख इन दोनों वर्णों के पहले जो अर्द्ध विसर्ग के सदृश दिखता है वह **जिह्वामूलीय** एवं×प×फ इन दोनों वर्णों के पूर्व जो अर्द्ध विसर्ग के सदृश दिखता है वह उपधमानीय वर्ण जाना जाता है। अं और अ: आदि स्वर वर्णों के पश्चात् यदि ऊपर बिन्दु लगा हो तो अनुस्वार तथा आगे लगा हो तो पूर्णविसर्ग समझनी चाहिए।

अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः॥ (ल.सि.कौ._११ = पा.१,१.६९)

प्रतीयते विधीयत इति प्रत्ययः। अविधीयमानोऽणुदिच्च सवर्णस्य संज्ञा स्यात्। अत्रैवाण् परेण णकारेण। कु चु टु तु पु एते उदितः। तदेवम् - अ इत्यष्टादशानां संज्ञा। तथेकारोकारौ। ऋकारस्त्रिंशतः। एवं ऌकारोऽपि। एचो द्वादशानाम्। अनुनासिकाननुनासिकभेदेन यवला द्विधा, तेनाननुनासिकास्ते द्वयोर्द्वयोस्संज्ञा।

भावार्थ- जिन वर्णों का प्रयोग-विधान प्रतीत हो वे प्रत्यय कहलाते हैं। प्रयोग-विधान होने पर वर्णों की पूर्व सामान्य स्थिति बदल जाती है इस कारण विधीयमान वर्णों की सवर्णसंज्ञा होना अशक्य है,क्योंकि सामान्य रूप से स्वर वर्णों के आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत होता है परन्तु यही स्वरवर्ण प्रयोग (विधान) दशा में आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत से बदलकर संवृत हो जाता है । इस कारण अविधीयमान ही अण् और उदित् वर्ण आपस में सवर्णी होते हैं।यहाँ पर अण् प्रत्याहार को परणकार अ,इ,उ,ऋ,ऌ,ए,ओ,ऐ,औ,ह,य,व,र,ल)तक समझे।यहाँ पर उदित का अभिप्राय कु=कवर्ग ,चु=चवर्ग,टु=टवर्ग, तु=तवर्ग,पु=पवर्ग हैं। सवर्ण कार्य होने से ही "अ" वर्ण का १८ संज्ञा भेद होता है।इसी प्रकार इ,उ वर्ण का भी १८,१८ भेद होते हैं। ऋ का १८ एवं ऌ का १२ भेद होकर ऋ एवं ऌवर्ण का कुल ३० भेद होते हैं क्योंकि ऋ एवं ऌ दोनों ही आपस मे सवर्णी होते हैं।

परःसंनिकर्षःसंहिता॥ (ल.सि.कौ._१२ = पा.१,१.१०९)

वर्णानामतिशयितः संनिधिः संहितासंज्ञः स्यात्॥

भावार्थ-वर्णों के अतिसामीप्यता (अत्यन्त व्यवधानरहित) वर्णों की संहिता संज्ञा होती है। जहाँ पर दो स्वरों के बीच में किसी अन्य व्यञ्जनवर्ण का व्यवधान नहीं हो उनकी संहिता संज्ञा होती है। उदाहरण- सुधी+उपास्य इनमें इ+उ इनके मध्य में किसी अन्य व्यञ्जन वर्ण की व्यवधान नहीं होने से इनकी संहिता संज्ञा हुई।

हलोऽनन्तराःसंयोगः॥ (ल.सि.कौ.-१३ = पा-१,१.७)

अज्भिरव्यवहिता हलः संयोगसंज्ञाः स्युः॥

भावार्थ-अच् वर्णों से अव्यवहित(व्यवधानरहित) हल् वर्णों की संयोगसंज्ञा होती है।उदाहरण- त् र् य् अ म् ब् अ क् अ =त्र्यम्बक इस पद में त् र् य् इनकी संहिता संहिता हुई।

सुप्तिङन्तं पदम्॥ (ल.सि.कौ._१४ = पा.१,४.१४)

सुबन्तं तिङन्तं च पदसंज्ञं स्यात्॥

भावार्थ-सुबन्त (सु औ जस् आदि) और तिङन्त (तिप् तस् झि आदि) की पदसंज्ञा होती है। उदाहरण- राम: रामौ,रामा: आदि सुबन्त हैं , इसी प्रकार पठति,पठत: पठन्ति आदि तिङन्त है इस कारण पदसंज्ञक हैं।

इति संज्ञाप्रकरणम्

(ख) <u>सन्धि प्रकरण</u>

सन्धि की परिभाषा-: किन्हीं दो सार्थक शब्दों के मेल को सन्धि कहते हैं। उदाहरण- विद्या+आलय=विद्यालय अर्थात विद्या का संग्रह अथवा प्राप्ति स्थान ।

वर्णों की अत्यन्त समीपता को संधि या संहिता कहते हैं, (परःसन्निकर्ष संहिता) वस्तुत: व्यवहार, बोलचाल में अपनी प्रकृति के अनुसार वर्णों में मिलना हो जाता है। इनका पृथक् पृथक् करके नहीं, अपितु सम्मिलित रूप में उच्चारण हो जाता है। यथा-

संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते॥

सन्धिसूत्राणि	सन्धिकार्य	उदाहरण
इको यणचि	यण्-सन्धिः	सुध्युपास्यः, अन्वगच्छत्, पित्रादेशः, लाकृतिः

एचोऽयवायावः	अयादिसन्धिः	कवये, भवनम्, गायकः
आद्गुणः	गुणसन्धिः	वेदोक्तः, शास्त्रोपदेशः
अकः सवर्णे दीर्घः	सवर्णदीर्घः	विद्यालयः, श्रीशः, होतृकारः
वृद्धिरेचि	वृद्धिसन्धिः	संहितैकपदे, तण्डुलौदनम्, वेदैश्वर्यम्
उपसर्गादृति धातौ	वृद्धिसन्धिः	प्रार्च्छति
एङः पदान्तादति	पूर्वरूपसन्धिः	एतेऽपि, जशोऽन्ते
एङि पररूपम्	पररूपसन्धिः	प्रेजते, उपोषति
प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्	प्रकृतिभावःसन्धिः	श्रुती इमे, बालिके एते, विष्णू इमौ
अचो रहाभ्यां द्वे	द्वित्वकार्यम्	गौय्यौं

राम+अयनम् = रामायणम्, विद्या+आलयः= विद्यालयः, महा+ऋषि= महर्षिः, यदि+अपि =यद्यपि, सत्+आचार: + सदाचारः, तत्+लीनः= तल्लीनः संधियुक्त पद सहज भाव से उच्चारण हो जाता है। सन्धि का नियम है कि यह संधि एक पद में, धातु-उपसर्ग में तथा समास में नित्यरूप से होती है, पर वाक्य में वक्ता की इच्छा पर निर्भर है वह वर्णों को पृथक् पृथक् रूप से भी उच्चारण कर सकता है, यथा इदम् आम्रफलम् अस्ति अथवा इदमाम्रफलमस्ति।

संधि में पूर्व तथा उत्तरवर्ती दो वर्णों का संयोग होता है और पूर्ववर्ती वर्ण के अनुसार इस संधि का नामकरण होता है।

इस दृष्टि से यह संधि तीन प्रकार की होती है, 1. स्वरसंधि 2. व्यञ्जनसंधि तथा 3. विसर्गसंधि

स्वर सन्धि - स्वर के साथ स्वर के मिलने से जो विकार होता है उसे स्वर सन्धि कहते हैं।

स्वरसन्धि के भेद- सन्धि मूलत: आठ प्रकार की होती है, यथा-

1. यण सन्धि, 2. अयादि सन्धि, 3. गुण सन्धि, 4. दीर्घ सन्धि 5 . वृद्धि सन्धि 6. पूर्वरूप सन्धि 7. पररूप सन्धि तथा 8. प्रकृति भाव। इन सन्धियों को उदाहरणों द्वारा सुस्पष्ट किया जा रहा है-

1. **यण् सन्धि –**

सूत्र- इको यणचि

वृत्ति-इकः स्थाने यण् स्यादचि संहितायां विषये।)

सूत्रार्थ- इक्(इ उ ऋ ऌ) के स्थान में क्रमशः यण् (य व र ल) वर्ण हो जाते हैं, इसके बाद यदि अच प्रत्याहार(अ,इ, उ, ऋ.ऌ ए,ओ,ऐ,औ) का कोई वर्ण पर में हो तो।

स्थानी	इ, ई	उ, ऊ	ऋ	ऌ
आदेशः	य्	व्	र्	ल्

उदाहरण-

प्रति+एकम्=प्रत्येकम्, इ+ए =ये

हेतु+आभासः= हेत्वाभासः, उ+आ= वा

पितृ+आदेशः पित्रादेशः, ऋ +आ =रा

ऌ+आकृतिः =लाकृतिः, ऌ+आ=ला

2. **अयादि स्वर सन्धि**- सूत्र एयोऽयवायावः

एकारस्य स्थाने अय् आदेशः - ए - अय्

ओकारस्य स्थाने अव् आदेशः - ओ -अव्

ऐकारस्य स्थाने आय् आदेशः - ऐ - आय्

औकारस्य स्थाने आव् आदेशः - औ - आव्

नियम - यदि ए, ओ, ऐ, औ के बाद कोई भिन्न स्वर वर्ण आये तो इनके स्थान पर क्रमशः अय , अव,आय,आव हो जाते हैं।

उदाहरण- ने+अनम्(ए+अ=अय) =नयनम्

पो+ अन: (ओ+अ=अव) पवनः

नै +अकः (ऐ+अ=आय) नायकः

पौ +अक: (औ+अ=आव)= पावकः

3. **गुण सन्धि**-

(क.)गुणसंज्ञाविधायकसूत्र -अदेङ्गुणः,

वृत्ति-अत् एङ् च गुण संज्ञ:स्यात।

सूत्रार्थ-अत्=ह्रस्व अ वर्ण और एङ्=ए ओ इनकी गुणसंज्ञा होती है।

(ख.)गुणकार्यविधायकसूत्र-आद्गुणः

वृत्ति-अवर्णादचि परे पूर्वपरयोरेको गुणादेशः स्यात्।)

सूत्रार्थ-(अवर्ण) अ अथवा आ के बाद (अच्)अ,इ,उ,ऋ,ऌ,ए,ओ,ऐ,औ)हो तो पूर्व पर के स्थान में गुण एक आदेश होता है।

नियम -यदि अ अथवा आ के बाद ह्रस्व अथवा दीर्घ अ,इ, उ, ऋ.ऌ ए,ओ,ऐ,औ आता है तो क्रमशः ए. ओ, गुणकार्य हो जाता है। अर्थात् अ+इ=ए. अ+उ= ओ,

उदाहरण-

उप+ इन्द्रः = उपेन्द्रः, अ+इ= ए

महा+ईशः = महेशः, आ+ई=ए

सूर्य +उदयः=सूर्योदयः, अ+उ=ओ

गंगा+उदकम्=गंगोदकम्,आ+उ =ओ

हित+उपदेशः=हितोपदेशः,अ+उ=ओ

पर+उपकारः परोपकारः, अ+उ= ओ

देव+ऋषिः=देवर्षिः, अ+ऋ=अर्

महा+ऋषिः महर्षिः,आ+ऋ=अर्

4. **दीर्घ स्वर सन्धि-**

सूत्र -अकः सवर्णे दीर्घः

वृत्ति-अकः सवर्णेऽचि परे पूर्वपरयोर्दीर्घ एकादेशः स्यात्

सूत्रार्थ-(अकः) अक के बाद (सवर्णेऽचि)सवर्ण अच पर(बाद)में हो तो (पूर्वपरयोरेको) पूर्व और पर वर्ण के स्थान में (दीर्घ एकादेशः स्यात्) दीर्घ एक आदेश प्राप्त होता है।

नियम- यदि ह्रस्व अथवा दीर्घ अ, इ, उ, ऋ के बाद क्रमशः ह्रस्व अथवा दीर्घ अ, इ, उ, ऋ आये तो उन दोनों के स्थान पर क्रमशः आ, ई, ऊ, ॠ हो जाते हैं।

जैसे- अ/आ + अ/आ=आ, इ/ई + इ/ई=ई,

उ/ऊ + उ/ऊ =ऊ, ऋ/ऌ + ऋ/ऌ=ॠ

भोजन+आलयः= भोजनालयः, अ +आ =आ

विद्या+ अर्थी = विद्यार्थी, आ +अ =आ

विद्या+ आलय:= विद्यालयः,   आ +आ =आ

मुनि +इन्द्रः = मुनीन्द्रः,   इ+ई=ई

गिरि+ ईशः= गिरीशः,   इ+ई=ई

श्री +ईश: = श्रीशः   इ+इ=ई

विष्णु+ उदय:= विष्णूदयः,   उ+ उ= ऊ

भानु +उदयः= भानूदयः,   उ+उ= ऊ

पितृ +ऋणम् = पितृणम्,   ऋ+ऋ=ऋ

होतृ+ऋकार: =होतृकार: ऋ+ऋ=ऋ

कपि+ईश्वर: = कपीश्वरः   इ+ई=ई

भानु +उदयः =भानूदयः   उ+उ=ऊ

5. **वृद्धि स्वर सन्धि**

(क.) **वृद्धिसंज्ञाविधायकसूत्र** - वृद्धिरादैच्,

वृत्ति-आदैचवृद्धिसज्ञ:स्यात।

सूत्रार्थ- आत् =अ,आ और ऐच=ऐ,औ इनको वृद्धि संज्ञा होती है।

वृद्धिरेचि

(ख.)**वृद्धिकार्यविधायकसूत्र**

वृत्ति-आदेचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्।

सूत्रार्थ- आत् (अ,आ)से परे एच (ए,ओ,ऐ,औ)हो तो वृद्धिरूप एक आदेश होता है। (वृद्धिः एचि)

नियम -यदि अ अथवा आ के बाद ए, ऐ , ओ ,औ आये तो इनके स्थान पर क्रमशःऐ तथा औ हो जाते हैं।

अ/आ + ए/ऐ=ऐ   अ/आ + ओ/औ=औ

एक आदेश-   ऐ   औ

उदाहरण-मम+एकः=ममैकः, अ+ए=ऐ

महा+ऐश्वर्यम् =महैश्वर्यम्, आ+ऐ= ऐ

सदा+एव=सदैव, आ+ए =ऐ

अत्र+एव =अत्रैव, अ +ए =ऐ

तत्र+एव=तत्रैव, अ+ए =ऐ

ब्रह्म+ओदनम् =ब्रह्मौदनम् ,अ +ओ =औ

महा+औषधम् =महौषधम्, आ +औ =औ

6. **पूर्वरूप स्वर सन्धि-**

सूत्र –एङः पदान्तादति

वृत्ति-पदान्तादेङोऽति परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात्।

सूत्रार्थ- पदान्त ए तथा ओ के परे ह्रस्व अकार रहने पर पूर्वरूप आदेश होता है।

नियम- ए. ओ के बाद ह्रस्व अ आये तो 'अ' का पूर्वरूप 'ऽ' हो जाता है।

यथा- वने +अस्मिन्(ए+अ=एऽ) वनेऽस्मिन् ,रामो +अयम्(ओ+अ=ओऽ) रामोऽयम्

7. **पररूप स्वर सन्धि** –

सूत्र- एङि पररूपम्

वृत्ति-आदुपसर्गादेङादौ धातौ परे पररूपमेकादेशः स्यात्।

सूत्रार्थ- उपसर्ग पूर्वक अ वर्ण के बाद एङ आदि धातु (ए, ओ)परे (आगे) रहने पर पररूप आदेश होता है।

नियम- प्र आदि अवर्णान्त उपसर्गपूर्वक (अ, अप, अव) के बाद एङादि धातु का ए ओ से प्रारम्भ होने वाला कोई रूप (क्रिया पद) आये, तो उपसर्ग के अन्त के 'अ' का पररूप (अर्थात् लोप) हो जाता है।

जैसे-प्र +एजते (अ+ए=ए) प्रेजते

उप +ओषति (अ +ओ=ओ)उपोषति

अपवाद -अवर्णान्त उपसर्ग के बाद 'ए' अथवा 'ऐ' धातु का कोई रूप होने पर

पररूप न होकर 'वृद्धि सन्धि' होती है।

जैसे- उप+एधते =उपेधते, उप+एति =उपैति

8. **प्रकृतिभाव** – (प्लुत तथा प्रगृह्य संज्ञा वाले पदों की प्रकृति भाव संधि)

प्लुतसंज्ञाविधायकसूत्र-दूराद्धूते च

वृत्ति- दूरात सम्बोधने वाक्यस्य टेःप्लुतो वा।

सूत्रार्थ-दूर से सम्बोधन वाले पदों की प्लुतसंज्ञा होती है।

उदाहरण-आगच्छ कृष्णऽ३ अत्र गौश्चरति।(प्लुतसंज्ञा वाले पद)

प्रगृह्यसंज्ञा विधायकसूत्र- ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्,

वृत्ति-इदूदेदन्तंद्विवचनं प्रगृह्यं स्यात।

सूत्रार्थ-इत,(इकारान्त)उत,(उकारान्त)एत(एकारान्त) और द्विवचनान्त (सुबन्त,तिङन्त) वाले पदों की प्रगृह्य संज्ञा होती है। जैसे-हरी, विष्णु, गङ्गे ये सभी इत, उत, एत सुबन्त वाले पद है,इनका प्रगृह्यसज्ञा हुई।

उदाहरण- हरी एतौ =इ प्रगृह्य

विष्णू इमौ =ऊ प्रगृह्य

गङ्गे अमू =ए प्रगृह्य संज्ञा

सूत्र-निपात एकाजनाङ्

वृत्ति- एकोऽज्निपात आङ्वर्जःप्रगृह्य संज्ञा स्यात।

सूत्रार्थ- आङ्(आ)को छोडकर एक अच निपात वाले पदों की प्रगृह्य संज्ञा होती है

उदाहरण- इ इन्द्रः, (इ निपात है)   उ उमेशः(उ निपात है)

प्रकृतिभावसंधि विधायकसूत्र -प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्।

वृत्ति-एतेऽचि प्रकृत्याः स्युः।)

सूत्रार्थ- दूर से सम्बोधन वाले पदों की प्लुतसंज्ञा होती है,ऐसे प्लुत वाले शब्द, तथा प्रगृह्य संज्ञा वाले पदों के आगे अच् (स्वर वर्ण) होने पर विकल्प से प्रकृतिभाव संधि होती है, यहां पर सामान्य सन्धि का अभाव रहता है। यहां पर प्रकृतिभाव से तात्पर्य है कि जैसे शब्द विच्छेदित रूप में दिखता है वैसे ही रहना प्रकृतिभाव है।

प्रकृतिभाव संधि के उदाहरण –

इ इन्द्रः, (इ निपात है) (प्रगृह्यसंज्ञा वाले पद)

उ उमेशः(उ निपात है) (प्रगृह्यसंज्ञा वाले पद)

हरी एतौ। विष्णू इमौ। गङ्गे अमू। (प्रगृह्यसंज्ञा वाले पद)

आगच्छ कृष्णऽ३ अत्र गौश्चरति। (प्लुतसंज्ञा वाले पद)

(ग) समास परिचय-

"समसनमिति समासः" जहाँ पर अनेक पदों का एक पद में एकीकरण किया गया हो उसे समास कहते हैं। जैसे- छात्राणां आवासः(छात्रावासः) ,यहां पर छात्रों का आवास छात्रावास कहलाता है।

समास के पाँच भेद हैं (१)केवल समास (२) अव्ययी भाव समास, (३) तत्पुरुष समास,(तत्पुरुष के दो भेद (क) कर्मधारय समास, (ख) द्विगु समास. (४) द्वन्द्व समास, (५) बहुव्रीहि समास।

नोट-: पाठ्यक्रम को लघु बनाने की दृष्टि से यहां पर केवल तीन ही समासों का विवेचन आगे किया जा रहा है –(१)केवल समास (२) अव्ययी भाव समास, (५) बहुव्रीहि समास।

(१) **केवल समास- "विशेष संज्ञाविनिर्मुक्तः केवलसमासः"** जिस समास को कोई विशेष नाम न दिया गया हो उसे केवल समास कहते हैं।

उदाहरण- भूतपूर्वः,(पूर्वं भूतम्)

भूतपूर्वः। पूर्वं भूतम् यह लौकिक विग्रह और पूर्व अम् भूत सु यह अलौकिक विग्रह है। अलौकिक विग्रह में विभक्ति के साथ तथा अलौकिक विग्रह में विभक्ति को अलग कर विग्रह किया जाता हैं।।

पूर्व अम् भूत सु इस अलौकिक विग्रह में समास होता है। इसमें सुबन्त है- पूर्व अम् इसके साथ समर्थ सुबन्त है- भूत सु। इस सूत्र में पूर्व अम् भूत सु का समास हो गया अर्थात् यह पूरा समुदाय समाससंज्ञा को प्राप्त हो गया। समास करने के बाद 'पूर्व अम् भूत सु' इस समुदाय की **"कृत्तद्धितसमासाश्च"** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई, 'पूर्व अम् भूत सु' यह पूरा समुदाय प्रातिपदिक कहलाया। इसलिए इसमें लगे हुए प्रत्यय प्रातिपदिक के अवयव बन गये।" भूतपूर्वे चरट्" इस सूत्र के निर्देश के कारण भूत शब्द का पूर्व निपातन किया है। अम् और सु इन दो प्रत्ययों का "सुपो धातुप्रातिपदिकयोः" से लुक् हुआ। भूतपूर्व बना। पहले 'पूर्व अम् भूत सु' की प्रातिपदिकसंज्ञा की गई थी किन्तु वह सब बदल गया, भूतपूर्व बना, फिर भी वह प्रातिपदिक बना हुआ है, क्योंकि एक परिभाषा है- एकदेशविकृतमनन्यवत् एक भाग में कोई विकार आ जाय तो वह कोई दूसरा नहीं बन जाता, वह ही रहता है। इस परिभाषा के बल पर पहले के

प्रातिपदिक में विकृति आने पर भी प्रातिपदिकत्व बना रहता है। अतः भूतपूर्व को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई, उसको रूत्व और विसर्ग हुआ - भूतपूर्वः। भूतपूर्वः जो पहले हुआ हो।

(२) **अव्ययी भाव समास**- 'पूर्वपद प्रधानः अव्ययी भावः।'

अव्ययी भाव समास में पहला पद प्रधान होता है और सम्पूर्ण शब्द अव्यय की भाँति प्रयोग होता है। जैसे - उपगंगम् =गंगायाः समीपम् (गंगा के समीप)। इस सामासिक शब्द में 'उप' का अर्थ 'समीप' ही विग्रह में प्रयुक्त हुआ है।

अव्ययीभाव समास के कुछ प्रयोग

यद्यपि अव्ययी भाव समास में नपुंसकलिंग प्रथमा एक वचन ही रहता है, लेकिन कुछ स्थानों पर उसमें अन्य विभक्तियों का प्रयोग भी होता है जिसके कुछ विशेष उदाहरण निम्न दिए जा रहे हैं।

अर्थ	**समास पद**	**विग्रह**
अप	विष्णु या अपविष्णोः	अपविष्णोः
परि	पर विष्णु या परविष्णोः	पर विष्णोः (विष्णु के चारों ओर)
बहिः	बहिर्वनम् या बहिर्वनात्	बहिर्वनात् (वन से बाहर)
प्राक्	प्राग्वनम् या प्राग्वनात्	प्राक् वनात् (वन से पूर्व)

अव्ययी भाव समास में समास होने के कुछ रूप परिवर्तन भी होते हैं। जैसे समीप के अर्थ में

उपगंगम्	गंगायाः समीपम् (गंगा के पास)
उपराजम्	राज्ञः समीपम् (राजा के पास)
उपसमिधम् या उपसमित्	समिधायाः समीपम् (समिधा के पास)
उपगिरि या उपगिरम्	गिरेः समीपम् (गिरि के पास)
उपचर्मम् या उपचर्म	चर्मणः समीपम् (चर्म के पास)

(३) **बहुब्रीहि समास-**

परिभाषा - जिस समास में अनेक प्रथमान्त पद गौण होकर किसी अन्य पद के विशेषण हो जाते हैं, उसे बहुब्रीहि समास कहते हैं। इसके विग्रह करने पर 'यत्' शब्द के रूप (यस्य, येन, अस्मिन्) आदि लगते हैं।

जैसे - पीतानि अम्बराणि यस्य सः पीताम्बरः (पीत हैं अम्बर जिसके) ।

इस समास के निम्न भेद हैं:

(क) समानाधिकरण बहुब्रीहि समास (ख) व्यधिकरण वहुब्रीहि समास (ग) तुल्य योग बहुब्रीहि समास (घ) व्यतिहार बहुब्रीहि समास।

(क) समानाधिकरण बहुब्रीहि समास -जिस बहुब्रीहि समास के दोनों पदों में समान विभक्ति होती है, उसे समानाधिकरण बहुब्रीहि समास कहते हैं। इसका विग्रह करते समय 'यत्' शब्द को द्वितीया आदि विभक्तियों का प्रयोग होता है। इस प्रकार का समस्त पद एक विशेषण की तरह प्रयुक्त होता है।

जैसे—

द्वितीया- प्राप्तं धनं यम् सः प्राप्तधनः (पुरुष) (प्राप्त हो गया है धन जिसको ऐसा पुरुष)

तृतीया - लब्धा कीर्तिः येन सः लब्धकीर्तिः (पुरुष) (लब्ध की है कीर्ति जिसने ऐसा पुरुष)

सप्तमी- विज्ञाः छात्राः यस्मिन् सः विज्ञछात्रः (विद्यालय:) (वित्त है छात्र जिसमें ऐसा विद्यालय)

(घ) **व्यधिकरण बहुव्रीहि समास**- जिस बहुबीहि समास में दोनों पद अलग-अलग विभक्तियों के हों उसे व्यधिकरण वहुब्रीहि समास कहते हैं।

जैसे-

चन्द्रशेखरः चन्द्रः शेखर यस्य सः (भगवान शिव)।(चन्द्र है शिखर पर जिसके ऐसा शिव)

चक्रपाणि - चक्रम् पाणौ यस्य सः (भगवान विष्णु)। (चक्र है पाणि में जिसके ऐसा विष्णु)

(ग) तुल्य योग बहुब्रीहि समास -जब बहुब्रीहि समास में 'साथ' अर्थ वाले 'सह' का समास होता है, तब तुल्य योग बहुब्रीहि समास होता है 'सह' का विकल्प से 'स' हो जाता है।

जैसे पुत्रेण सह इति सपुत्रः सहपुत्रः वा (पुत्र के साथ है जो)

अर्जुनेन सह इति सार्जुनः साहार्जुनः वा। (अर्जुन के साथ है जो)

(घ) व्यतिहार बहुब्रीहि समास -आपस में युद्ध, लड़ाई आदि का ज्ञान कराने वाले सप्तम्यन्त तथा तृतीयान्त पदों में जो समास होता है, उसे व्यतिहार बहुब्रीहि समास कहते हैं।

जैसे केशेषु केशेषु गृहीत्वा प्रवृत्तम् इदं युद्धम् इति- केशाकेशि (बालो को पकड़कर आरम्भ हुआ युद्ध)

मृगस्य नयने इव नयने यस्या सा इति -मृगनयनी (मृग के नयनों के हैं नयन जिसके ऐसी स्त्री)

(ङ) कारक परिचय-

"साक्षात् क्रियान्वित्वं कारकत्वम्। क्रियाजनकत्वं कारकत्वम्।क्रियानिष्पादकत्वं कारकत्वम्," अर्थात् क्रिया से साक्षात् सम्बन्ध रखने वाले विभक्ति युक्त पदों को कारक कहते हैं जैसे 'राम ने विद्यालय में मोहन के लिए कलम से पत्र लिखा।' इस वाक्य में लिखा क्रिया है। राम ने इसे सम्पन्न किया है। इसका फल 'पत्र' पर पड़ा है। 'कलम' इसमें सहायक है। 'विद्यालय' इसका आधार है तथा 'मोहन' इसका प्रयोजन है। इस प्रकार राम, पत्र, कलम, विद्यालय तथा मोहन का क्रिया से साक्षात् सम्बन्ध है, अतः ये सब कारक हैं।

हिन्दी भाषा में कारकों की संख्या 8 है लेकिन संस्कृत भाषा में 6 ही कारक माने गए हैं। जिनको संस्कृत भाषा में कारक नहीं माना गया है वे सम्बन्ध तथा सम्बोधन कारक हैं। इन दोनों का क्रिया से साक्षात् सम्बन्ध नहीं है, अतः इन दोनों को कारक की श्रेणी में नहीं रखा गया है। जैसे - 'कृष्ण ने पाण्डु के पुत्र अर्जुन से कहा।' इस वाक्य में पाण्डु का सम्बन्ध पुत्र से तो है लेकिन 'कहा' क्रिया से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः यह कारक नहीं कहा जाएगा। इस प्रकार संस्कृत भाषा में छ कारक (कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण) तथा सात विभक्तियाँ (प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी) होती हैं।

कर्ता कर्म च करणं सम्प्रदानं तथैव च।

अपादानाधिकरणमित्याहुः कारकाणि षट्॥

सामान्य रूप में हिन्दी में आठों कारकों को विभक्ति चिह्न पूर्वक नीचे लिखे जा रहे हैं -

विभक्ति	**कारक**	**चिह्न (हिन्दी में)**
प्रथमा	कर्ता	ने
द्वितीया	कर्म	को , TO
तृतीया	करण	से (के द्वारा) BY ,WITH
चतुर्थी	सम्प्रदान	के लिए, को , FOR
पञ्चमी	अपादान	से (अलग होने के अर्थ में) FROM
षष्ठी	सम्बन्ध	का, की, के, ना, नी, ने, रा, री, रे OF
सप्तमी	अधिकरण	में, पर, पै, ऊपर, IN /ON

सम्बोधन सम्बोधन हे, भो, अरे, ओ

साधारणतया उक्त कथन के अनुसार विभक्तियों का सम्बन्ध क्रिया से होता है, लेकिन कभी-कभी कुछ अव्ययों के योग में विशिष्ट विभक्तियाँ आती हैं। इन्हें 'उपपद विभक्ति' कहते हैं। जैसे- 'अहं रामेण सह विद्यालयं गच्छामि।' इसमें 'सह' के साथ आने के कारण 'रामेण' में तृतीया हुई है, अतः यह उपपद विभक्ति है।

हम यहाँ संक्षेप में कारकों तथा विभक्तियों की पुनरावृत्ति करेंगे -

१. **कर्ता कारक- (प्रथमा विभक्ति)**

२. **कर्म कारक (द्वितीया विभक्ति)**

३. **करण कारक (तृतीया विभक्ति)**

४. **सम्प्रदान कारक (चतुर्थी विभक्ति)**

५. **अपादान कारक (पञ्चमी विभक्ति)**

६. **सम्बन्ध कारक (षष्ठी विभक्ति)**

७. **अधिकरण कारक (सप्तमी विभक्ति)**

८. **सम्बोधन कारक (प्रथमा विभक्ति)**

साधारणतया उक्त कथन के अनुसार विभक्तियों का सम्बन्ध क्रिया से होता है, लेकिन कभी-कभी कुछ अव्ययों के योग में विशिष्ट विभक्तियाँ आती हैं। इन्हें **'उपपद विभक्ति'** कहते हैं। जैसे- 'अहं रामेण सह विद्यालयं गच्छामि।' में 'सह' के साथ आने के कारण 'रामेण' में तृतीया हुई है, अतः यह उपपद विभक्ति है।

हम यहाँ संक्षेप में कारकों तथा विभक्तियों की पुनरावृति करेंगे -

कर्ता कारक (प्रथमा विभक्ति) - सूत्र - स्वतन्त्रः कर्त्ता।

क्रिया के करने वाले को कर्ता कहते हैं। हिन्दी में इसका चिह्न 'ने' होता है। जैसे - 'राम ने पुस्तक पढ़ी।' कभी-कभी यह छिप भी जाता है। जैसे 'राम जाता है।' क्रिया के आगे 'कौन' लगाने से जो उत्तर में आता है, वह कर्त्ता होता है। जैसे- 'राम जाता है' में कौन जा रहा है? 'राम', अत: 'राम' कर्त्ता है।

इस कारक के अन्तर्गत कुछ नियम इस प्रकार भी हैं -

1. 'कर्तृवाच्य' के कर्ता में प्रथमा विभक्ति होती है। जैसे रामः विद्यालयं गच्छति। लेकिन भाववाच्य तथा कर्मवाच्य के कर्ता में तृतीया विभक्ति एवं कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है। जैसे - रामेण विद्यालय: गम्यते,मोहनेन गृहं गम्यते, कृष्णेन पुस्तकं पठ्यते।यहां पर कर्मविषय के अन्तर्गत- विद्यालय:,गृहं,पुस्तकं प्रथमा विभक्ति में है।

2. भाववाच्य के कर्ता में तृतीया विभक्ति ही होती है।परन्तु इस वाक्य में कर्म गौण होता है। जैसे रामेण पठ्यते,रामेण गम्यते,मोहनेन लिख्यते, कृष्णेन दृश्यते। इन वाक्यों में कर्म पठित नहीं है।

3. सम्बोधन में भी 'प्रथमा' विभक्ति का प्रयोग किया जाता है। जैसे - भो राम! इह आगच्छ। (सूत्र- सम्बोधने च)

4. अव्यय के साथ और किसी के नाम को बताने के अर्थ में भी प्रथमा विभक्ति का प्रयोग किया जाता है। जैसे- महात्मा गांधी को सम्बोधन में 'बापू' के नाम से बोलते हैं।

5. नाम मात्र में भी प्रथमा का प्रयोग किया जाता है। जैसे 'इक्ष्वाकु' वंशप्रभवो 'रामो' नाम जनैः श्रुतः।

कर्म कारक (द्वितीया विभक्ति) -

1. **सूत्र -कर्तुरीप्सिततमं कर्म। कर्मणि द्वितीया।**

नियम - जिसके ऊपर क्रिया के व्यापार का फल पड़ता है, उसे कर्म कारक कहते हैं। जैसे- अहं रामं पश्यामि। (मैं राम को देखता हूँ)। इस वाक्य में देखने के व्यापार का फल 'राम' पर पड़ रहा है, अतः 'रामम्' में कर्म कारक है। कर्म कारक का चिह्न 'को' है, किन्तु कभी-कभी यह छिपा भी रहता है। जैसे राम पुस्तक पढ़ता है। 'कर्तृवाच्य' के कर्म कारक में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे 'रामः ग्रन्थं पठति।' किन्तु कर्मवाच्य में कर्म कारक में प्रथमा विभक्ति होती है। जैसे - रामेण 'ग्रन्थः' पठ्यते। (राम के द्वारा ग्रन्थ पढ़ा जाता है।)

2. **सूत्र - अकथितञ्च।**

संस्कृत में सोलह धातुएँ तथा इनके अर्थ वाली दूसरी धातुएँ 'द्विकर्मक' होती हैं, अतःइनके दो-दो कर्म होते हैं, जो निम्न हैं-

दुह, याच्, पच्, दण्ड्, रुध, प्रच्छ, चि, ब्रू, शास्, जि, मथ्, मुषाम्।कर्म, युकस्यादकथितं तथा स्यान्, नी, हृ, कृष्, वहाम् ॥

इन धातुओं से सम्बद्ध हिन्दी से संस्कृत में अनुवाद करते समय विशेष सावधानी रखनी चाहिए। जैसे- कृष्ण गाय से दूध दुहता है। इस वाक्य में 'दुहता है' (दुह्) क्रिया का 'दूध' प्रधान कर्म में और 'गाय से' में 'से' सामान्य रूप से चिह्न होने के कारण अपादान कारक (पंचमी विभक्ति) होती है, लेकिन 'दुह' धातु के द्विकर्मक होने के कारण 'गाय से' की संस्कृत में 'धेनोः' (पंचमी) न होकर 'धेनुम्' (द्वितीया) ही होगी और सम्पूर्ण वाक्य की संस्कृत 'कृष्णः धेनुं दुग्धं दोग्धि' होगी। यह दूसरा कर्म गौण (अप्रधान) कर्म कहा जाता है। यही बात अन्य सभी धातुओं के लिए भी समझना आवश्यक है। जैसे -

1. दुह (दुहना) - कृष्णः धेनुं दुग्धं दोग्धि। (कृष्ण गाय से दूध दुहता है।)
2. याच् (माँगना) - बालक: जनकं मोदकं याचते। (बालक पिताजी से लड्डू माँगता है।) बलिं याचते वसुधाम्। (बलि से पृथ्वी माँगता है।)
3. पच् (पकाना) - अहं तण्डुलान् ओदनं पचामि। (मैं चावलों से भात पकाता हूँ।) सा तण्डुलान् ओदनं पचति। (वह चावलों से भात पकाती है।)
4. दण्ड् (दण्ड देना, जुर्माना करना) न्यायाधीशः चौरं सहस्त्रं दण्डयति। (जज चोर को हजार रुपयों का दण्ड देता है या जज चोर पर हजार रुपयों का जुर्माना करता है।)
5. रुध् (घेरना, रोकना) सः धेनुं ब्रजम् अवरुणद्धि। (वह गाय को ब्रज में घेरता है।)
6. प्रच्छ (पूछना) गुरुः छात्रं प्रश्नं पृच्छति। (गुरुजी विद्यार्थी से प्रश्न पूछते हैं।)
7. चि (चयन करना, इकट्ठा करना) सः पादपं पुष्पाणि अवचिनोति । (वह पेड़ से फूलों को इकट्ठा करता है।)
8. ब्रू (बोलना, कहना) देता है।) आचार्यः शिष्यं धर्मं ब्रूते । (आचार्य शिष्य को धर्म का उपदेश
9. शास् (शासन करना, कहना) गुरु शिष्यं धर्मं शास्ति। (गुरुजी शिष्य को धर्म बतलाते हैं।)
10. जि (जीतना) - देवदत्तः कृष्णदत्तं शतं जयति। (देवदत्त कृष्णदत्त से सौ रुपये जीतता है।)
11. मथ् (मथना) - सीता दुग्धं घृतं मथ्नाति । (सीता दूध से घी मथती है।)
12. मुष् (चुराना) - चौर: कृष्णं शतं मुष्णाति । (चोर कृष्ण से सौ रुपये चुराता है।)
13. नी (ले जाना) - सः ग्रामम् अजां नयति। (वह गाँव को बकरी ले जाता है।)
14. हृ (हरण करना, चुराना) चोरः रामं धनं हरति । (चोर राम का धन चुराता है।)

15. कृष् (खोदकर निकालना) जनाः भूमिं रत्नानि कर्षन्ति। (मनुष्य भूमि से रत्न निकालते हैं।)

16. वह (ढोकर ले जाना) भृत्यः ग्रामं भारं वहति। (नौकर गाँव को बोझा ले जाता है।)

उपर्युक्त सोलह धातुओं के अर्थ वाली अन्य धातुएँ भी दो कर्म रखती हैं। जैसे - आचार्य शिष्यं धर्मं कथयति। (आचार्य शिष्य से धर्म कहता है।) 'कथ्' धातु 'ब्रू' धातु के अर्थ वाली है। अतः यह भी द्विकर्मक है। इसी प्रकार अन्य उदाहरण जानने चाहिए।

3. सूत्र - कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे ।

नियम - समय तथा दूरी को बताने वाले शब्दों में अत्यन्त समीपता, निरन्तरता बतलाने के लए द्वितीया विभक्ति होती है। अर्थात् जितने समय अथवा जितनी दूरी तक कोई काम लगातार होता रहे या कोई वस्तु लगातार विद्यमान हो, तो समय तथा दूरी वाचक शब्दों में द्वितीया विभक्ति होती है।

जैसे – रामः चतुर्दशवर्षाणि वने न्यवसत्। (राम चौदह वर्ष तक वन में रहे।) यहाँ वन में रहने का कार्य अनवरत चौदह वर्षों तक हुआ है और 'चतुर्दश वर्ष' समय वाचक शब्द है। अतः चतुर्दशवर्षाणि में द्वितीया है।

4. सूत्र अधिशीङ्स्थासां कर्म।

नियम - यदि शीङ् (सोना) स्था (ठहरना) तथा आस् (बैठना) धातुओं से पूर्व 'अधि' उपसर्ग आए तो इनके आधार में द्वितीया होती है।

जैसे- **(क) शीङ्** (सोना)-बालः शय्याम् अधिशेते। बालक खाट पर सोता है। शय्या सोने का आधार है, अतः सामान्य नियमानुसार इसमें सप्तमी होनी चाहिये, लेकिन 'अधिशेते' में अधिपूर्वक शीङ् धातु है, अतः शय्याम् में द्वितीया विभक्ति हुई है।

(ख) स्था (ठहरना)-'रामः गृहम् अधितिष्ठति।' राम घर में स्थित है। स्थित होने का आधार 'गृह' है। सामान्यतया यहाँ भी सप्तमी का प्रयोग होना चाहिए, किन्तु अधितिष्ठति के साथ आने के कारण 'गृहम्' में द्वितीया का प्रयोग हुआ है।

(ग) आस् (बैठना) -राजा सिंहासनम् अध्यास्ते। (राजा सिंहासन पर बैठता है।) 'बैठने' का आधार सिंहासन है। सामान्यतया यहाँ भी सप्तमी का प्रयोग होना चाहिये था, लेकिन अध्यासत के साथ आने के कारण 'सिंहासनम्' में द्वितीया का प्रयोग किया गया है।

विशेष - यदि शीङ् स्था तथा आस् धातुओं से पूर्व 'अधि', उपसर्ग नहीं होगा, तो उनके आधार में सप्तमी का ही प्रयोग किया जाएगा, द्वितीया का नहीं। जैसे बालः शय्यां शेते। रामः गृहे तिष्ठति। राजा सिंहासने आस्ते।

5. **सूत्र - अभितः परितः समया निकषा हा प्रतियोगेऽपि। (वार्तिक)**

नियम- अभितः (चारो तरफ), परितः (चारो तरफ), समया (निकट), निकषा(निकट), हा(धिक्कार) तथा प्रति (की तरफ, को, के लिए) के योग में द्वितीया होती है।

- **जैसे – अभितः** - ग्रामम् अभितः आम्रवृक्षाः सन्ति। (गाँव के सब तरफ (चारों ओर) आम के पेड़ हैं।)
- **परितः** - दुर्गं परितः परिखा अस्ति। (किले के चारों ओर खाई है।)
- **समया** - रामः लंका समया रावणं व्यपादयत्। (राम ने लंका के निकट रावण को मारा।)
- **निकषा** - विद्यालयं निकषा गंगा अस्ति। (विद्यालय के पास गंगा नदी है।)
- **हा** - हा कृष्णभक्तम् (कृष्ण के भक्त को धिक्कार है।)
- **प्रति** - सीता-रामं प्रति अपश्यत्। (सीता ने राम की तरफ देखी।)

3. करण कारक (तृतीया विभक्ति)

क. **सूत्र- साधकतमं करणम्।**

नियम - जिसकी सहायता से कर्त्ता अपना कार्य पूरा करता है, उसमें करण कारक होता है और कर्मवाच्य के कर्ता तथा करण कारक में तृतीया विभक्ति होती है। इसका चिह्न- से तथा के द्वारा है, जैसे- सः नेत्राभ्यां पश्यति। (वह नेत्रों से देखता है।) इसमें देखने का कार्य नेत्रों से होता है। 'नेत्राभ्यां' में तृतीया है। रामेण पुस्तकं पठितम्। यहाँ पर कर्त्ता राम कर्मवाच्य में होने से तृतीया विभक्ति में है।

ख. सूत्र - स्वतन्त्रः कर्ता, कर्तृकरणयोस्तृतीया।

जैसे - **कर्मवाच्य में** -रामेण ग्रन्थः पठ्यते। भाववाच्य में- रामेण गम्यते (राम के द्वारा जाया जाता है) "रामेण रावणः हतः" इस वाक्य में राम कर्मवाच्य का कर्त्ता है।

नियम - कर्मवाच्य तथा भाववाच्य के कर्ता तथा करण में तृतीया विभक्ति होती है।

ग. सूत्र - येनाङ्गविकारः।

नियम - जिस अंग के द्वारा शरीरधारी में कोई विचार उत्पन्न हो जाता है, उसमें तृतीया का प्रयोग होता है। **जैसे**- सः नेत्रेण काणः अस्ति। (वह आँख से काना है।) इस वाक्य में आँख के द्वारा शरीरधारी में कानेपन का विकार उत्पन्न हो गया है, अतः 'नेत्रेण' में तृतीया है।

ख. सूत्र - सहयुक्तेऽप्रधाने।

नियम - 'साथ' में अर्थ रखने वाले 'सह', 'साकम्', 'समम्', 'सार्धम्' शब्दों के योग में तृतीया विभक्ति होती है।

जैसे - **'सह' 'साकम्', 'समम्', 'सार्धम्'**-रामः कृष्णेन सह गच्छति। (राम कृष्ण के साथ जाता है।) इस वाक्य में 'कृष्ण' तथा 'सह' का योग है (क्योंकि कृष्ण के साथ जाया जाता है।) अतः 'कृष्णेन' में तृतीया है। इसी प्रकार छात्रः गुरुणा साकम् आगच्छति। मनोहरः श्यामेन समं क्रीडति। अहं जनकेन समं गच्छामि। इन वाक्यों में कृष्णेन गुरुणा, श्यामेन, जनकेन में तृतीया विभक्ति है।

इकाई 3

प्रवचन कौशल विकास हेतु शिक्षाप्रद वैदिक आख्यानों का प्रयोगात्मक अभ्यास

(क)॥ विश्वामित्र नदी संवाद ॥

यह विश्वामित्र-नदीसंवाद ऋग्वेद के तीसरे मण्डल का 33वाँ सूक्त है, जिसमें कुल 13 मन्त्र हैं। यहाँ शुतुद्रु और विपाशा नदी का वर्णन किया गया है ,इस कथोपकथन में विश्वामित्र एवं नदी की कथा अतीव मनोहारी है।इस संवाद में शुतुद्रु और विपाशा नदी की सृष्टि का क्या कारण है ,उनकी सृष्टिकर्ता कौन है? विश्वामित्र के साथ नदियों की क्या वार्ता हुई इत्यादि का वर्णन इस सूक्त में प्राप्त होता है।

भरतवंशी विश्वामित्र सुदास से पौरोहित्य कर्म का धन लेकर अपने गन्तव्य मार्ग के लिए जाने लगा तो अन्य लोग भी उसका अनुकरण करने लग जाते हैं। रास्ते में नदियों में बाढ़ आ जाने के कारण उन्हें पार करना मुश्किल था। 13 मन्त्रों में विश्वामित्र द्वारा शुतुद्री और विपाट् नदियों से मार्ग देने के लिए प

प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वे इव विषिते हासमाने ।

गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट् छुतुद्री पयसा जवेते ॥१

पदपाठः- प्र । पर्वतानाम् । उशती इति । उपऽस्थात् । अश्वे इवेत्यश्वेऽइव । विसिते इति विऽसिते । हासमाने इति ।

गावाऽइव । शुभ्रे इति । मातरा । रिहाणे इति । विऽपाट् । शुतुद्री । पयसा । जवेते इति ॥१

मन्त्रार्थ- पर्वतों की गोद से निकलकर समुद्र की ओर जाने की इच्छा करती हुई (परस्पर) स्पर्धा से दौड़ती हुई, खुले बाग वाली दो घोड़ियों की तरह (बछड़े) को चाटती हुई दो सफेद माता गायों की तरह विपाट और शुतुद्री (अपने) प्रवाह से तेजी से बह रही हैं। ॥१॥

इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः ।

समाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रे ॥२

पदपाठः- इन्द्रेषिते इतीन्द्रऽइषिते । प्रऽसवम् । भिक्षमाणे इति । अच्छ । समुद्रम् । रथ्याऽइव । याथः । समाराणे इति सम्ऽआराणे । ऊर्मिऽभिः । पिन्वमाने इति । अन्या । वाम् । अन्याम् । अपि । एति । शुभ्रे इति ॥२॥

मन्त्रार्थ- इन्द्र द्वारा भेजी गई, बहने के लिए प्रार्थना करती हुई, दो रथियों की तरह समुद्र की ओर जा रही हो। हे शुभे! एक साथ जाती हुई, लहरों से उमड़ती हुई; तुममें से प्रत्येक एक-दूसरे की ओर जा रही हो। ॥२॥

अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासं विपाशमुर्वीं सुभगामगन्म ।

वत्समिव मातरा संरिहाणे समानं योनिमनु संचरन्ती ॥३

पदपाठः- अच्छ । सिन्धुम् । मातृऽतमाम् । अयासम् । विऽपाशम् । उर्वीम् । सुऽभगाम् । अगन्म । वत्सम्ऽइव । मातरा । संरिहाणे इति सम्ऽरिहाणे । समानम् । योनिम् । अनु । सञ्चरन्ती इति सम्ऽचरन्ती ॥३॥

मन्त्रार्थ- श्रेष्ठ नदी माता (शुतुद्री) के पास आया हूँ। चौड़ी तथा सुन्दर विपाट के पास आया हूँ। बछड़े को चाटती हुई दो माताओं की तरह, एक ही स्थान (समुद्र) को लक्ष्य करके बहती हुई (शुतुद्री और विपाशा) के पास आया हूँ। ॥३॥

एना वयं पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः ।

न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति ॥४

पदपाठः- एना । वयम् । पयसा । पिन्वमानाः । अनु । योनिम् । देवऽकृतम् । चरन्तीः । न । वर्तवे । प्रऽसवः । सर्गऽतक्तः । किम्ऽयुः । विप्रः । नद्यः । जोहवीति ॥४

मन्त्रार्थ- ऐसी हम लोग अपनी धारा से उमड़ रही है, तथा देव (इन्द्र) द्वारा निर्मित स्थान पर चल रही हैं। स्वाभाविक रूप से प्रवाहित हम लोगों की गति रुकने के लिए नहीं है। किस इच्छा से ऋषि (विश्वामित्र) नदियों की बार-बार स्तुति कर रहा है। ॥४॥

रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः ।

प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः ॥५

पदपाठः- रमध्वम् । मे । वचसे । सोम्याय । ऋतऽवरीः । उप । मुहूर्तम् । एवैः । प्र । सिन्धुम् । अच्छ । बृहती । मनीषा । अवस्युः । अह्वे । कुशिकस्य । सूनुः ॥५

मन्त्रार्थ- हे पवित्र जलवाली (नदियों)! सोमाप्लावित मेरे वचनों के प्रति अपनी यात्रा से क्षणभर के लिए रुक जाओ। अपनी सहायता का इच्छुक, कुशिकपुत्र मैंने ऊँची स्थिति से नदी (शुतुद्री) का आह्वान किया है। ॥५॥

इन्द्रो अस्माँ अरदद्वज्रबाहुरपाहन्वृत्रं परिधिं नदीनाम्।

देवोऽनयत्सविता सुपाणिस्तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः ॥६

पदपाठः-इन्द्रः । अस्मान् । अरदत् । वज्रऽबाहुः । अप । अहन् । वृत्रम् । परिऽधिम् । नदीनाम् । देवः । अनयत् । सविता । सुऽपाणिः । तस्य । वयम् । प्रऽसवे । यामः । उर्वीः ॥६

मन्त्रार्थ- वज्रधारी इन्द्र ने हमें खोदकर बाहर किया। उसने नदियों को घेरने वाले वृत्र को मारा। सुन्दर हाथों वाले सवितृ देव हम लोगों को लाए। हम जितनी चौड़ी हैं, उसकी आज्ञा में निरन्तर बहती हैं। ॥६॥

प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यं१ं तदिन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृश्चत्।

वि वज्रेण परिषदो जघानायन्नापोऽयनमिच्छमानाः ॥७

पदपाठः- प्रऽवाच्यम् । शश्वधा । वीर्यम् । तत् । इन्द्रस्य । कर्म । यत् । अहिम् । विऽवृश्चत् । वि । वज्रेण । परिऽसदः । जघान । आयन् । आपः । अयनम् । इच्छमानाः ॥७

मन्त्रार्थ- इन्द्र का वह पराक्रमयुक्त कार्य, जो उसने अहि को मारा, अवश्य कहने योग्य है। उसने वज्र से (जल के) प्रतिबन्धकों को काट डाला। जल अपना मार्ग खोजता हुआ प्रवाहित हुआ। ॥७॥

एतद्वचो जरितर्मापि मृष्ठा आ यत्ते घोषानुत्तरा युगानि।

उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो नि कः पुरुषत्रा नमस्ते ॥८

पदपाठः- एतत् । वचः । जरितः । मा । अपि । मृष्ठाः । आ । यत् । ते । घोषान् । उत्ऽतरा । युगानि ।उक्थेषु । कारो इति । प्रति । नः । जुषस्व । मा । नः । नि । करिति कः । पुरुषऽत्रा । नमः । ते ॥८

मन्त्रार्थ-हे स्तुतिगायक! इस वचन को कभी भी मत भूलो, ताकि भावियुगों के लोग तुम्हारे इस वचन को सुन सकें। हे कवि! अपनी स्तुतियों में हमारा आदर रखो। हम लोगों को मनुष्यकोटि में नीचे मत लाओ। (हमारा) तुम्हें नमस्कार है। ॥८॥

ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन।

नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधोअक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः ॥९

पदपाठः-ओ इति । सु । स्वसारः । कारवे । शृणोत । ययौ । वः । दूरात् । अनसा । रथेन । नि । सु । नमध्वम् । भवत । सुऽपाराः । अधःऽअक्षाः । सिन्धवः । स्रोत्याभिः ॥९

मन्त्रार्थ- हे सुन्दर बहनों! (मुझ) कवि की बात सुनो; (क्योंकि मैं) तुम्हारे पास बहुत दूर से गाड़ी तथा रथ से आया हूँ। अच्छी तरह झुक जाओ। हे नदियों! अपनी जलधारा से अक्ष के नीचे होकर (बहती हुई) आसानी से पार करने योग्य हो जाओ। ॥९॥

आ ते कारो शृणवामा वचांसि ययाथ दूरादनसा रथेन ।

नि ते नंसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्या शश्वचै ते ॥१०

पदपाठः- आ । ते । कारो इति । शृणवाम । वचांसि । ययाथ । दूरात् । अनसा । रथेन ।

नि । ते । नंसै । पीप्यानाऽइव । योषा । मर्याऽइव । कन्या । शश्वचै । त इति ते ॥१०

मन्त्रार्थ-हे कवि! हम तुम्हारी बातें सुनती हैं, (क्योंकि तुम) बहुत दूर से गाड़ी तथा रथ के साथ आए हो। तुम्हारे लिए मैं नीचे झुकती हूँ, जैसे दूध से भरे स्तन वाली औरत (अपने पुत्र के लिए) तथा जैसे युवती अपने प्रेमी का आलिङ्गन करने के लिए (झुकती है) ।॥१०॥

यदङ्ग त्वा भरताः संतरेयुर्गव्यन्ग्राम इषित इन्द्रजूतः ।

अर्षादह प्रसवः सर्गतक्त आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम् ॥११

पदपाठः- यत् । अङ्ग । त्वा । भरताः । सम्ऽतरेयुः । गव्यन् । ग्रामः । इषितः । इन्द्रऽजूतः ।

अर्षात् । अह । प्रऽसवः । सर्गऽतक्तः । आ । वः । वृणे । सुऽमतिम् । यज्ञियानाम् ॥११

मन्त्रार्थ- हे नदियो चूँकि (तुम्हारी अनुमति मिल गई है, इसलिए) भरतवंशी (हम लोग) तुम्हें पार करें, पार जाने की इच्छा वाला (तुम्हारे द्वारा) अनुज्ञात एवं इन्द्र द्वारा भेजा गया (भरतवंशियो का) झुंड (पार करे) (तुम्हारा) प्रवाह अपनी स्वाभाविक गति में प्रवाहित होता हुआ बहे। मैं पवित्र नदियों का समर्थन चाहता हूँ। ॥११॥

अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम् ।

प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम् ॥१२

पदपाठः- अतारिषुः । भरताः । गव्यवः । सम् । अभक्त । विप्रः । सुऽमतिम् । नदीनाम् ।

प्र । पिन्वध्वम् । इषयन्तीः । सुऽराधाः । आ । वक्षणाः । पृणध्वम् । यात । शीभम् ॥१२

मन्त्रार्थ- पार जाने की इच्छा वाले भरतवंशियों ने पार कर लिया। ब्राह्मण ने नदियों का समर्थन प्राप्त कर लिया। सुन्दर धनवाली (तुम लोग) धन लाती हुई अपनी जगह पर प्रवाहित होओ; भर जाओ; शीघ्रता से बहो। ॥ १२॥

उद्व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।

मादुष्कृतौ व्येनसाघ्न्यौ शूनमारताम् ॥ १३

पदपाठः-उत् । वः । ऊर्मिः । शम्याः । हन्तु । आपः । योक्त्राणि । मुञ्चत ।

मा । अदुःऽकृतौ । विऽएनसा । अघ्न्यौ । शूनम् । आ । अरताम् ॥ १३

मन्त्रार्थ- तुम्हारी धारा जुवा की कील के नीचे से बहे। जल रस्सी को छोड दे। दृष्कृतों से रहित, पापरहित तथा तिरस्कार न करने योग्य (ये नदियाँ) वृद्धि न प्राप्त करें। ॥ १३॥

(ख) ॥ देवापि -शान्तनु की कथा ॥

(देवापिश्चार्ष्टिषेण:शन्तनुश्च करव्यौ भ्रातरौ बभूवतु:।स शन्तनु:कनीयानभिषेयाचञ्चक्रे।देवापिस्तप:प्रतिपेदे ।तत: शन्तनो राज्ये द्वादश वर्षाणि देवो न ववर्ष।तमूचुर्ब्राह्मणा:-अधर्मस्त्वयाचरितो ज्येष्ठं भ्रातरमन्तरित्याभिषेचितम्,तस्मात्ते देवो न वर्षतीति।स सन्तनुर्देवापिं शिशिक्ष राज्येन।तमुवाच देवापि:पुरोहित्स्तेऽसानि याजयानि च त्वेति।तस्यैतद वर्ष-काम-सूक्तम्। तस्यैषा भवति।)

कुरुवंश में ऋष्टिषेण के दो पुत्र हुए जिनका नाम देवापि एवं शान्तनु था ,इनमें देवापि श्रेष्ठ था, देवापि को राज्य भोगविलास में उत्सुकता बिल्कुल नहीं थी, त्यागमूर्ति देवापि के इस बात का लाभ लेकर अनुज शान्तनु ने अपने मन्त्रीगणों के सहायता से राजतिलक करवाकर स्वयं उस राज्य का राजा बन गया।

इस बात को सुनकर ज्येष्ठ भाई देवापि ने तपस्या करने के लिए वन के तरफ प्रस्थान किया ।कुछ दिनों के बाद उस राज्य में अकाल पड गई ,बारह वर्षों तक वर्षा ही नहीं हुई,पूरे राज्य में सभी प्राणी जल के अभाव में त्राहि-त्राहि करने लगे।इस प्रकार अकाल पड़ने के कारण को जानने के लिए वहाँ के ज्योतिषियों एवं धर्माचार्य ब्राह्मणों को बुलाया गया ,उन्होनें यह बात कही कि ज्येष्ठ पुत्र देवापि के स्थान पर शान्तनु को राजा बनाया गया है जो यह अधर्म का कार्य हुआ है ,इसी कारण देवराज इन्द्र रुष्ट होकर

वर्षा देना बन्द कर दिए हैं,इस प्रकार ब्राह्मणों से आज्ञा-सुझाव लेकर ज्येष्ठ भ्राता देवापि को मनाकर लाने हेतु शान्तनु वन को गए।

वन में देवापि से मिलकर शान्तनु ने आदरपूर्वक राजा बनने हेतु प्रार्थना की परन्तु देवापि ने राजा बनने के लिए बिल्कुल ही मना कर दिया, फिर भी अनुज द्वारा आदर पूर्वक प्रार्थना से प्रसन्न होकर अग्रज देवापि ने कहा कि मैं तुम्हारे राज्य में वर्षा करने के लिए तुमसे यज्ञ करवाउँगा और मैं स्वयं तुम्हारा पुरोहित बनकर यज्ञ करूँगा। इस सन्दर्भ में ऋग्वेदसंहिता के अन्तर्गत वर्षा-काम-सूक्त का पाठ प्राप्त होता है-

मन्त्र- आर्ष्टिषेणो होत्रमृषिर्निषीदन्देवापिर्देवसुमतिं चिकित्वान् ।
स उत्तरस्मादधरं समुद्रमपो दिव्या असृजद्वर्ष्या अभि ॥५
आर्ष्टिषेणः । होत्रम् । ऋषिः । निऽसीदन् । देवऽआपिः । देवऽसुमतिम् । चिकित्वान् ।
सः । उत्ऽतरस्मात् । अधरम् । समुद्रम् । अपः । दिव्याः । असृजत् । वर्ष्याः । अभि ॥५
(ऋग्वेद-१०/९८/५)

मन्त्रार्थ-ऋष्टिषेण का पुत्र देवापि नामक ऋषि ने देवताओं के कल्याणमयी बुद्धि को(वर्षा करवाने के भाव से वृष्टिविद्या को) जानता हुआ यज्ञार्थ बैठ गया ।उसने ऊपर के समुद्र-अन्तरिक्ष से निचले समुद्र को लक्ष्य करके उत्तम (सस्य-संपत्करी) वर्षा के जलों को पृथिवी पर लाकर जल से पूर्ण किया।

इस विषय में अन्य प्रमाण भी प्राप्त होता है-

यद्देवापिः शंतनवे पुरोहितो होत्राय वृतः कृपयन्नदीधेत् ।
देवश्रुतं वृष्टिवनिं रराणो बृहस्पतिर्वाचमस्मा अयच्छत् ॥७
यत् । देवऽआपिः । शम्ऽतनवे । पुरःऽहितः । होत्राय । वृतः । कृपयन् । अदीधेत् ।
देवऽश्रुतम् । वृष्टिऽवनिम् । रराणः । बृहस्पतिः । वाचम् । अस्मै । अयच्छत् ॥७

मन्त्रार्थ- राजा शन्तनु के लिए होत्र-यज्ञ करने के प्रयोजन से वरण किए गए देवापि ने पुरोहित बनकर प्रजाओं पर कृपा करते हुए बृहस्पति -ब्रह्मा देवताओं से सुने हुए कल्याणमयी वर्षाकामसूक्त का पाठकर देवताओं को प्रसन्नकर वर्षाजल को प्राप्त किए।

शुक्ल यजुर्वेदीय पुरुष सूक्त

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्॥ स भूमिꣳ सर्वतं स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥

भावार्थ-सभी लोकों में व्याप्त महानारायण सर्वात्मक होने से अनन्त सिरवाले, अनन्त नेत्र वाले और अनन्त चरण वाले हैं। वे पाँच तत्त्वों से बने इस गोलकरूप समस्त व्यष्टि और समष्टि ब्रह्माण्ड को सब ओर से व्याप्त कर नाभि से दस अंगुल परिमित देश का अतिक्रमण कर हृदय में अन्तर्यामी रूप में स्थित हैं ॥ १ ॥

पुरुष एवेदꣳ सर्वंय्यद्भूतंय्यच्च भाव्यम् ॥ उतामृतत्त्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ २ ॥

भावार्थ-जो यह वर्तमान जगत् है, जो अतीत जगत् है और जो भविष्य में होने वाला जगत् है, जो जगत् के बीज अथवा अन्न के परिणामभूत वीर्य से नर, पशु, वृक्ष आदि के रूप में प्रकट होता है, वह सब कुछ अमृतत्व (मोक्ष) के स्वामी महानारायण पुरुष का ही विस्तार है ॥ २ ॥

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः ॥ पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतन्दिवि ॥ ३ ॥ ॥

भावार्थ-इस महानारायण पुरुषकी इतनी सब विभूतियाँ हैं अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्तमान में विद्यमान सब कुछ उसी की महिमा का एक अंश है। वह विराट् पुरुष तो इस संसार से अतिशय अधिक है। इसीलिये यह सारा विराट् जगत् इसका चतुर्थांश है। इस परमात्मा का अवशिष्ट तीन पाद अपने अमृतमय (विनाशरहित) प्रकाशमान स्वरूप में स्थित है ॥ ३ ॥

त्रिपादूर्ध्वऽउदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः ॥ ततो विष्वङ्व्यक्क्रामत्साशनानशनेऽअभि ॥ ४ ॥

भावार्थ-उस महानारायण पुरुष से सृष्टि के प्रारम्भ में विराटस्वरूप ब्रह्माण्ड देह तथा उस देह का अभिमानी पुरुष (हिरण्यगर्भ) प्रकट हुआ। उस विराट् पुरुष ने उत्पन्न होने के साथ ही अपनी श्रेष्ठता स्थापित की। बाद में उसने भूमि , तदनन्तर देव, मनुष्य आदि के पुरों (शरीरों) का निर्माण किया ॥ ५ ॥

ततो विराडजायत विराजोऽअधि पूरुषः ॥ स जातोऽअत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ५॥

भावार्थ-यह महानारायण पुरुष अपने तीन पादों के साथ ब्रह्माण्ड से ऊपर उस दिव्य लोक में अपने सर्वोत्कृष्ट स्वरूप में निवास करता है और अपने एक चरण (चतुर्थांश)-से इस संसार को व्याप्त करता है।

अपने इसी चरणको माया में प्रविष्ट कराकर यह महानारायण देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि के नानारूप धारण कर समस्त चराचर जगत् में व्याप्त है ॥ ४ ॥

तस्म्माद्युज्ञात्सर्व्वहुतः सम्भृतम्पृषदाज्ज्यम् ॥ पुशूँस्ताँश्चक्रे वायुव्व्यानारुण्ण्या ग्ग्राम्म्याश्च ये ॥ ६ ॥

भावार्थ-उस सर्वात्मा महानारायण ने सर्वात्मा पुरुषका जिसमें यजन किया जाता है, ऐसे यज्ञसे पृषदाज्य (दधि से मिश्रित घृत)-को सम्पादित किया। उस महानारायण ने उन वायुदेवता वाले पशुओं तथा जो हरिण आदि वनवासी तथा अश्व आदि ग्रामवासी पशु थे उनको भी उत्पन्न किया ॥ ६ ॥

तस्म्माद्युज्ञात्सर्व्वहुतऽऋचः सामानि जज्ज्ञिरे ॥ छन्दाᳬसि जज्ज्ञिरे तस्म्माद्यजुस्तस्म्मादजायत ॥ ७ ॥

भावार्थ-उस सर्वहुत यज्ञपुरुष से ऋग्वेद और सामवेद उत्पन्न हुए, उसी से सर्वविध छन्द उत्पन्न हुए और यजुर्वेद भी उसी यज्ञपुरुष से उत्पन्न हुआ ॥ ७॥

तस्म्मादश्श्वाऽअजायन्त ये के चोभयादतः ॥ गावो ह जज्ज्ञिरे तस्म्मात्तस्म्माज्ज्जाताऽअजावयः ॥ ८ ॥

भावार्थ-उसी यज्ञपुरुष से अश्व उत्पन्न हुए और वे सब प्राणी उत्पन्न हुए जिनके ऊपर-नीचे दोनों तरफ दाँत हैं। उसी यज्ञपुरुष से गौएँ उत्पन्न हुई और उसी से भेड-बकरियाँ पैदा हुई। ॥९॥

तँय्युज्ञम्बर्हिषि प्रौक्क्षन्न्पुरुषञ्जातमग्ग्रतः ॥ तेन देवाऽअयजन्त साद्ध्याऽऋषयश्च ये ॥ ९ ॥

भावार्थ-सृष्टिसाधन-योग्य या देवताओं और सनक आदि ऋषियों ने मानस यज्ञ की सम्पन्नता के लिए सृष्टि के पूर्व उत्पन्न उस यज्ञसाधनभूत विराटपुरुष का प्रोक्षण किया और उसी विराट पुरुष से ही इस यज्ञ को सम्पादित किया। ॥९॥

यत्पुरुषंव्यदधुः कतिधा व्व्यकल्प्पयन् ॥ मुखङ्किमस्यासीत्किम्बाहू किमूरू पादाऽउच्च्येते ॥ १० ॥ ॥

भावार्थ-जब यज्ञसाधनभूत इस विराट् पुरुष की महानारायण से प्रेरित महत्, अहंकार आदि की प्रक्रिया से उत्पत्ति हुई, तब उसके कितने प्रकारों की परिकल्पना की गयी? उस विराट के मुँह, भुजा, जंघा और चरणोंका क्या स्वरूप कहा गया है ? ॥ १० ॥

ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्बाहू राजन्न्यः कृतः ॥ ऊरू तदस्य यद्वैश्श्यः पद्ध्याᳬ शूद्द्रोऽअजायत ॥ ११ ॥

भावार्थ-ब्राह्मण उस यज्ञोत्पन्न विराट् पुरुषका मुखस्थानीय होनेके कारण उसके मुखसे उत्पन्न हुआ, क्षत्रिय उसकी भुजाओं से उत्पन्न हुआ, वैश्य उसकी जाँघों से उत्पन्न हुआ तथा शूद्र उसके चरणों से उत्पन्न हुआ ॥ ११ ॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो॑ऽअजायत॥ श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥ १२॥

भावार्थ-विराट् पुरुष के मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, नेत्र से सूर्य उत्पन्न हुआ, कान से वायु और प्राण उत्पन्न हुए तथा मुख से अग्नि उत्पन्न हुई ॥ १२ ॥

नाभ्या॑ऽआसीदन्तरिक्षꣳ शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत ॥

पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२ ॥ऽअकल्पयन्॥ १३॥

भावार्थ-उस विराट् पुरुष की नाभि से अन्तरिक्ष उत्पन्न हुआ और सिर से स्वर्ग प्रकट हुआ। इसी तरह से चरणों से भूमि और कानों से दिशाओं की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार देवताओं ने उस विराट् पुरुषके विभिन्न अवयवों से अन्य लोकों की कल्पना की ॥ १३ ॥

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत॥ वसन्तोस्यासीदाज्यं ग्रीष्मऽइध्मः शरद्धविः ॥ १४ ॥

भावार्थ-जब विद्वानों ने इस विराट् पुरुष के देह के अवयवों को ही हवि बनाकर इस ज्ञानयज्ञ की रचना की, तब वसन्त ऋतु घृत, ग्रीष्म- ऋतु समिधा और शरद्-ऋतु हवि बनी थी ॥ १४ ॥

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ॥ देवा यद्यज्ञन्तन्वानाऽअबध्नन्पुरुषम्पशुम्॥ १५॥

भावार्थ-जब इस मानस याग का अनुष्ठान करते हुए देवताओं ने इस विराट् पुरुष को ही पशु के रूप में भावित किया; उस समय गायत्री आदि सात छन्दोंने सात परिधियों का स्वरूप स्वीकार किया; बारह मास, पाँच ऋतु, तीन लोक और सूर्यदेव को मिलाकर इक्कीस अथवा गायत्री आदि सात, अतिजगती आदि सात और कृति आदि सात छन्दों को मिलाकर इक्कीस समिधाएँ बनीं ॥ १५ ॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्म्माणि प्रथमान्यासन्॥ ते ह नाकम्महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ १६ ॥

भावार्थ-सिद्ध संकल्प वाले देवताओं ने विराट् पुरुष के अवयवों की हवि के रूप में कल्पना कर इस मानस-यज्ञ में यज्ञपुरुष महानारायण की आराधना की। बाद में ये ही महानारायण की उपासना के मुख्य उपादान बने। जिस स्वर्ग में पुरातन साध्य देवता रहते हैं, उस दुःख से रहित लोक को ही महानारायण यज्ञपुरुष की उपासना करनेवाले भक्तगण प्राप्त करते हैं ॥ १६ ॥

इकाई ४

ब्राह्मणग्रन्थ एवं उपनिषदों में प्राप्त कुछ लघु आख्यान

शुनःशेप आख्यान

(ऐतरेय ब्राह्मण ३३.३)

इक्ष्वाकु वंश के वेधस के पुत्र राजा हरिश्चन्द्र निःसन्तान थे। उनकी सौ पत्नियाँ थीं पर किसी से भी उन्हें कोई सन्तान नहीं हुई। एक बार उनके प्रासाद (राजभवन) में नारद और पर्वत ऋषि आए। राजा ने नारद ऋषि से पूछा कि पुत्र होने से क्या लाभ है? महर्षि नारद ने दस श्लोकों में उत्तर दिया, जिसका सारांश यह है कि पुत्र होने से पिता पितृ ऋण से मुक्त हो जाता है, पुत्र आत्मा से उत्पन्न होने के कारण आत्मवत् होता है, पुत्र द्वितीय लोक की ज्योति (प्रकाशक) है आदि।

इस उपदेश के बाद महर्षि नारद ने राजा से कहा- 'तुम वरुणदेव के पास जाकर सन्तान माँगो और कहो कि मैं उस सन्तान से ही तुम्हारा यज्ञ करूँगा'। राजा ने वैसा ही किया। वरुण की कृपा से राजा को रोहित नामक पुत्र प्राप्त हुआ। वरुणदेव ने राजा से कहा, 'अब तुम पुत्र से मेरा यजन करो'। राजा विभिन्न अवस्थाओं की दुहाई देकर वरुण को टालता रहा। जब रोहित क्षत्रधारी (गुरुकुल जाने योग्य) हो गया तब पुनः वरुणदेव ने कहा, 'अब इससे मेरा यज्ञ करो'। राजा ने पुत्र को बुलाया और कहा- 'हे पुत्र ! वरुणदेव ने तुम्हें दिया है, मैं तुम्हें वरुण के यज्ञ में दूँगा'। यज्ञ में जाने के लिए रोहित ने मना कर दिया और वह वन में चला गया।

अपनी अवहेलना होने पर वरुणदेव ने हरिश्चन्द्र को पकड़ लिया और उसे जलोदर रोग हो गया। इस बात को रोहित ने सुना तो वह वन से वापस लौटने लगा। मार्ग में इन्द्र ने ब्राह्मण का रूप रख उसे 'चरैवेति चरैवेति' का उपदेश किया-

चरन् वै मधुविन्दति चरन् स्वादुमुदुम्बरम् ।

सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन् ॥

चरैवेति चरैवेति ॥

'जो देशाटन नहीं करता, उसे सुख प्राप्त नहीं होता, जिस प्रकार सूर्य दिनभर चलता रहता है वैसे ही मनुष्य को भी चलते रहना चाहिए। ब्राह्मण की आज्ञा मान रोहित पुनः वन में विचरण करने लगा।

छः बार रोहित ने वापस लौटने की इच्छा की और हर बार इन्द्रदेव ने उसे 'चरैवेति चरैवेति' का उपदेश कर वापस लौटा दिया। इस तरह रोहित छः वर्षों तक वन में विचरण करता रहा। इसी प्रसंग में वह जंगल में सुयवस् के पुत्र अजीगर्त से मिला जो अत्यन्त निर्धन था। उसके तीन पुत्र थे-शुनः पुच्छ, शुनःशेप एवं शुनोलांगूल। रोहित ने अजीगर्त से कहा- 'तुम मुझे अपना एक पुत्र यज्ञ करने के लिये दे दो, मैं तुम्हें सौ गायें दूंगा'। अजीगर्त लोभ में पड़ गया। उसने ज्येष्ठ पुत्र शुनः पुच्छ को देने से मना कर दिया उसकी पत्नी ने सबसे छोटे पुत्र शुनोलांगूल को देने से मना किया। पर वे दोनों मध्यम पुत्र शुनःशेप को देने के लिये मान गये। रोहित ने सौ गायें अजीगर्त को दीं और उसके पुत्र को लेकर घर आया। घर आकर पिता से बोला कि मैं इसके द्वारा अपने को यज्ञ बलि से बचाऊँगा। तब राजा हरिश्चन्द्र वरुण के पास जाकर बोला- 'मैं इस (शुनःशेप) के द्वारा आप का यज्ञ करूँगा'। वरुणदेव मान गए तथा राजसूय यज्ञ की विधि बताई। इस प्रकार अभिषेचन के दिन राजा ने पशु के स्थान पर पुरुष को बलि नियुक्त किया।

इस यज्ञ में होता ऋषि विश्वामित्र थे, ऋषि जमदग्नि अध्वर्यु थे, ऋषि वसिष्ठ ब्रह्मा थे तथा ऋषि अयास्य उद्गाता थे। यज्ञ आरम्भ करने पर बलिपशु के रूप में शुनःशेप को बाँधने के लिये कोई व्यक्ति नहीं मिला। अजीगर्त ने कहा, 'मुझे सौ गायें और दो, मैं उसको बाँधूंगा'। राजा ने उसे सौ गायें प्रदान की। अजीगर्त ने अपने पुत्र को बाँध दिया। 'आप्री' ("सुसमिद्धो न आ वह० इत्यादि") मन्त्रों के पाठ और अग्नि की परिक्रमा के उपरान्त बलिपशु का वध करने हेतु कोई नहीं मिला। तब अजीगर्त ने सौ और गायों के बदले उसका वध करना स्वीकार किया। उसे सौ गायें दी गई और वह तलवार तेज करने लगा। अपने ही पिता को ऐसा करते देख शुनःशेप प्रजापति की निम्न ऋचा द्वारा स्तुति करने लगा -

कस्य॑ नू॒नं क॑त॒मस्या॒मृता॑नां॒ मना॑महे॒ चारु॑ दे॒वस्य॒ नाम॑ ।

को नो॑ म॒ह्या अदि॑तये॒ पुन॑र्दात्पि॒तरं॑ च दृ॒शेयं॑ मा॒तरं॑ च ॥ ऋग्वेद १.२४.१

इस प्रकार पुनः शेप की रक्षा के लिए प्रजापति ने अग्नि के पास, अग्नि ने सविता के पास, सविता ने वरुण के पास, वरुण ने पुनः अग्नि की शरण में जाने को कहा। तब अग्नि ने उसे विश्वेदेवा देवताओं की स्तुति करने के लिये कहा। विश्वेदेवा ने उसे देवराज इन्द्र के पास जाने को कहा। इन्द्र की स्तुति करने पर इन्द्र ने उसे एक सोने का रथ दिया और अश्विनों की स्तुति करने को कहा, अश्विनों ने उषा की स्तुति के लिये आदेश किया।

इस प्रकार जैसे-जैसे वो विभिन्न देवों की स्तुति करता गया, उसके बन्धन खुलते गये और हरिश्चन्द्र का पेट रोग मुक्त होते गया। जब उसने अन्तिम मन्त्र पढ़ा तो शुनःशेप के सभी बन्धन खुल गये और राजा हरिश्चन्द्र भी पूरी तरह स्वस्थ हो गये। इसके बाद यज्ञ के होता ऋषि विश्वामित्र ने शुनः शेप को पुत्ररूप में स्वीकार किया तथा उसे '**देवरात**' नाम दिया।

ऐतरेय ब्राह्मण में इस आख्यान के पठन-श्रवणादि का माहात्म्य वर्णित है। विभिन्न पापों के निवारण तथा सन्तान और राज्य की प्राप्ति के लिये शुनः शेप की कथा का श्रवण लाभदायी है।

याज्ञवल्क्य और गार्गी

(शतपथ ब्राह्मण) बृहदारण्यकोपनिषद (3/1-8)

प्राचीन समय में जनक की एक राजसभा में देश-विदेश के विद्वान् सम्मिलित हुए। इन ब्रह्मज्ञानियों की सभा में कहोल, कौषितिकेय, भुज्यु, जारत्कारव, चक्रायण तथा उद्दालक, आरुषि आदि उपस्थित थे। इनमें गार्गी नाम की वचक्नु की ब्रह्मवादिनी कन्या भी उपस्थित थी।

"तस्य हि जनकस्य वैदेहस्य विजिज्ञासा बभूव क: स्विदेषां ब्रह्मणानामनूचानताम् इति........भगवन्तो यो वो ब्रह्मिष्ठ: स एता गा उदजतामिति। (बृहदारण्यकोपनिषद्-3/2-8)

अथ हैनं गार्गी वाचक्नवी पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच यदिदं सर्वमप्स्वो च प्रोतं च कस्मिन्नु खल्वाप ओताश्चप्रोताश्चेति..... कस्मिन्नु खलु ब्रह्मलोका ओताश्च प्रोताश्च? (बृहदारण्यकोपनिषद्-3/6-1)

महर्षि याज्ञवल्क्य से ब्रह्म-ज्ञान के विषय में उपर्युक्त ऋषियों ने कई प्रश्न पूछे। इसी प्रसंग से उनसे गार्गी एवं याज्ञवल्क्य के मध्य कई प्रश्नोत्तर पर चर्चा हुई। अनेकों प्रश्नोत्तर के बाद गार्गी ने पूछा कि ब्रह्मलोक किसमें अभिभूत है?, तब याज्ञवल्क्य से न रहा गया। उन्होंने गार्गी से कहा ऐसा न हो कि प्रश्नाधिक्य से तुम्हारा मस्तक गिर जाए। अति-प्रश्न से मर्यादा भंग होगी। इस पर गार्गी शान्त हो गई।

याज्ञवल्क्य एवं गार्गी के मध्य हुए, प्रश्नोत्तर

गार्गी - तत्व जल में अभिभूत है, वह जल किसमें अभिभूत है?

याज्ञवल्क्य- वायु में।

गार्गी- वायु किसमें स्थित है?

याज्ञवल्क्य- अन्तरिक्ष लोक में।

गार्गी- अन्तरिक्ष किसमें?

याज्ञवल्क्य- गन्धर्व लोक में।

गार्गी- गन्धर्व लोक किसमें?

याज्ञवल्क्य- आदित्य लोक में।

इसी बीच याज्ञवल्क्य से ब्रह्मज्ञानी उद्दालक ने प्रश्न पूछे। उद्दालक के संतुष्ट होने पर गार्गी को पुनः प्रश्न पूछने की इच्छा हुई। गार्गी ने ब्रह्मवादी ऋषियों से कहा -'मेरे दो प्रश्नों के संतोषजनक उत्तर यदि याज्ञवल्क्य जी दे देते है, तो इन्हें कोई नहीं जीत सकता'। ऋषियों से अनुमति प्राप्त होने पर गार्गी ने पुन: प्रश्न किये- पहला प्रश्न स्वर्ग के नीचे और पृथ्वी के ऊपर जो अन्तरिक्ष है और जो भूत, वर्तमान तथा भविष्यत् काल के रूप में कहा जाता है वह किसमें ओत-प्रोत है ? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया- आकाश में। दूसरा प्रश्न पूछा-आकाश किसमें अभिभूत है?

याज्ञवल्क्य ने कहा जिसका वर्णन बह्मवादी लोग स्थूल तथा सूक्ष्म आदि रूप में करते हैं, जो न खाता है, न किसी से खाया जाता है, आकाश उसी में अभिभूत है। इस प्रकार अक्षर-तत्व का विवेचन करते हुए कहा कि- इस अक्षर को जानने वाला ब्रह्मज्ञानी होता है। अन्त में गार्गी ने सभी ऋषियों से कहा- ब्रह्मवादी ऋषियों याज्ञवल्क्य सबसे सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी जिन्हें कोई जीत नहीं सकता है।

उद्दालक (आरुणि) द्वारा श्वेतकेतु को ब्रह्मविद्या का उपदेश

(छान्दोग्योपनिषद्-५/३/१से६/८/७ तक)

ऋषि अरुण का पुत्र आरुणि-उद्दालक थे, इन्होंने **'तत्त्वमसि'** का उपदेश किया था। एक बार उद्दालक पुत्र श्वेतकेतु ने विद्या प्रमाद से युक्त होकर पञ्चाल देश के राजा जैवलि प्रवाहण के पास गया, राजा जैवलि ने श्वेतकेतु से पाँच प्रश्न किए किन्तु वह राजा के एक भी प्रश्न का उत्तर ना दे सका, इस प्रकार लज्जित होकर वह दुःखित मन से पिता के पास लौट आया। उन प्रश्नों के उत्तर स्वयं उद्दालक भी नहीं जानते थे, इस प्रकार उक्त प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए उद्दालक ने राजा जैवलि के पास जाकर बड़े ही आदर के साथ पञ्चाग्निविद्या (आहवनीय आदि अग्नि की उपासना विद्या) के साथ देवयान, पित्र्यान आदि अनेकों विद्याओं का ज्ञान प्राप्त किया। ऋषि के अनुसार यह विद्या अनेकों पातकों का नाश करने वाली हैं।

"अथ ह य एतानेवं पञ्चाग्निन्वेद न सह तैरप्याचरन्पाप्मना लिप्यते शुद्धः पूतः पुण्यलोको भवति"

(छान्दोग्योपनिषद्-५.१०.१०)।

ऋषि उद्दालक अत्यन्त श्रेष्ठ विद्योपासक थे। ये महाभारत में धौम्य ऋषि की गुरुसेवा के लिए आदर्श शिष्य कहे गए हैं।

इन्होंने संसार के लिए 'तत्त्वमसि' महावाक्य दिया जो दार्शनिक निधि का आधार विचार बना हुआ है। उद्दालक ने यह विचार अपने पुत्र श्वेतकेतु को दिया था। वाक्य है-'तत्त्वमसि' अर्थात् तुम वही हो। तुम स्वयं ही ब्रह्म हो, ईश्वर हो। इस प्रकार के ज्ञान के अभाव के कारण श्वेतकेतु को विद्या प्राप्ति के बाद काफी घमण्ड हो गया था। उद्दालक ने अपने पुत्र को विद्याप्रमाद से रहित होने के लिए उससे कई आध्यात्मिक विषयों पर चर्चा की, श्वेतकेतु ने अति सौम्य भाव से अपने पिता उद्दालक से पञ्चाग्नि की उपासना का ज्ञान प्राप्त किया, आगे चलकर श्वेतकेतु ने अपने आचार्यों से वैश्वानरादि अनेकों विद्याएँ प्राप्त की, **'स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच'** (छान्दोग्योपनिषद्-६.८.७)

इकाई - ५

पौराणिक आख्यानों का परिचय एवं कथावाचन प्रयोग

भगवान श्रीकृष्ण का जन्म

मथुरा के कारागार में बन्द देवकी ने एक-एक करके छः पुत्रों को जन्म दिया, किन्तु उसका एक भी पुत्र सुरक्षित नहीं रह सका। कंस ने देवकी के सभी पुत्रों को पैदा होते ही मार डाला। देवकी और वसुदेव दोनों केवल आंसू बहाकर रह जाते थे।

जब देवकी के गर्भ में उनका सातवां पुत्र आया, तो भगवान ने अपनी योगमाया को बुला कर उनसे कहा- योगमाया, देवकी मथुरा के कारागार में बन्द है। उसके गर्भ से शेष उत्पन्न होने जा रहा रहे हैं। तुम शेष को देवकी के गर्भ से निकाल कर वसुदेव की दूसरी पत्नी रोहिणी के गर्भ में स्थापित कर दो। वे रोहिणी के गर्भ से पैदा होंगे। उनका नाम बलराम होगा। मैं स्वयं देवकी के गर्भ से जन्म धारण करूंगा। तुम गोकुल में नन्द की पत्नी यशोदा के गर्भ से जन्म धारण करो। योगमाया ने भगवान की आज्ञा का पालन किया।

भाद्रपद की कृष्ण अष्टमी की रात्रि थी। रोहिणी नक्षत्र था। अर्धरात्रि का समय था। भगवान मथुरा के कारागार में प्रकट हुए। ब्रह्मा आदि देवता वहां पहुंच कर भगवान की प्रार्थना करने लगे- भगवान, आप सर्वव्यापक हैं, सर्व दुःखहारी हैं। सारा ब्रह्मांड आपसे ही परिचालित है; सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह और उपग्रह आदि सब आपसे ही प्रकाशित हैं। आप दीनों के बन्धु हैं। सज्जनों के त्राता हैं। धर्मप्रेमियों को सुख देनेवाले हैं। हम सब आपकी शरण में हैं। कृपा करके हमारी रक्षा कीजिये।

ब्रह्मा आदि देवता जब भगवान की प्रार्थना करके चले गये, तो भगवान बालक के रूप में वसुदेव और देवकी को दिखायी पड़े। उनके हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म था। वे विभाकर के सदृश तेजोमय दिखायी पड़ रहे थे। वसुदेव और देवकी दोनों ने क्रम-क्रम से भगवान की वन्दना की।

भगवान बालक के रूप में देवकी की गोद में रुदन करने लगे।भगवान ने वसुदेव जी को आदेश दिया था कि जब वे बालक रूप में रुदन करने लगें, तो उन्हें गोकुल में नन्द की पत्नी यशोदा के पास पहुंचा दिया जाये और यशोदा से उत्पन्न नवजात बालिका को ला कर देवकी को दे दिया जाये।

भगवान श्रीकृष्ण जब बालक के रूप में रुदन करने लगे, तो उनकी योगमाया के कारण कारागार के सभी फाटक खुल गये और फाटकों पर नियुक्त प्रहरी सो गये। वसुदेव जी भगवान की आज्ञानुसार उन्हें एक टोकरे में सुला कर, टोकरे को सिर पर रख कर कारागार से बाहर निकल पड़े। अंधेरी रात थी। आकाश में बादल छाये हुए थे। हवा धीरे-धीरे चल रही थी। रह-रहकर बूंदें भी पड़ रही थीं। वसुदेव जी सिर पर टोकरा लिये हुए यमुना के किनारे जा पहुंचे।

यमुना बढ़ी हुई थी। बड़ी-बड़ी लहरें उठ रही थीं। वसुदेव जी बढ़ी हुई यमुना को देख कर डर गये। वे बढ़ी हुई यमुना में घुसें तो किस तरह घुसें? वसुदेव जी शंकित चित्त से सोचने लगे, रह-रहकर सोचने लगे।

सहसा वसुदेव जी के भीतर से आवाज-सी सुनायी पड़ी- वसुदेव जी, डरिये नहीं। यमुना को पार करने के लिए आगे बढ़िये। वसुदेव जी साहस करके यमुना में घुस पड़े। जब उनकी नाक तक पानी पहुंचा तो वे घबड़ा उठे। उसी समय टोकरे में सोये हुए शिशु रूप भगवान श्रीकृष्ण ने अपना दाहिना पैर टोकरे से बाहर निकाल दिया। भगवान श्री कृष्ण के स्पर्श मात्र से यमुना का पानी घट गया। इतना घट गया कि वसुदेव जी के घुटनों तक रह गया। वे बड़ी सरलता के साथ यमुना के उस पार गोकुल, जा पहुंचे।

गोकुल में भी योगमाया ने अपना चमत्कार प्रकट कर रखा था। यशोदा के घर का द्वार खुला हुआ था। घर के सभी लोग निद्रित थे। स्वयं यशोदा भी एक बालिका को जन्म देकर निद्रित हो गयी थीं। उन्हें यह भी ज्ञात नहीं था कि उन्होंने लड़के को जन्म दिया है या लड़की को।

वसुदेव जी ने टोकरे से उठा कर शिशु-रूप भगवान श्रीकृष्ण को यशोदा की बगल में सुला दिया और यशोदा से उत्पन्न बालिका को अपने टोकरे में रख लिया। वे सिर पर टोकरा रख कर जिस प्रकार मथुरा से गोकुल पहुंचे थे, उसी प्रकार गोकुल से मथुरा भी जा पहुंचे।

मथुरा में कारागार के फाटक अभी तक खुले हुए थे, प्रहरी भी पहले की तरह सो रहे थे। वसुदेव जी बिना किसी विघ्न बाधा के कारागार में अपनी कोठरी में जा पहुंचे। उनके कोठरी में पहुंचते ही फिर फाटक बंद हो गये। प्रहरी जाग उठे और पहरा देने लगे।

वसुदेव जी ने टोकरे में सोयी हुई बालिका को उठाकर अपनी पत्नी की गोद में दे दिया। बालिका रुदन करने लगी- केहां, केहां।

बालिका के रुदन को सुनकर प्रहरी चौंक उठे- अरे यह क्या? क्या देवती के गर्भ का आठवां पुत्र पैदा हो गया?

उधर कंस बड़ी उत्सुकता के साथ देवकी के आठवें बालक के जन्म की प्रतीक्षा कर रहा था, उसका एक-एक दिन युग के समान बीत रहा था। वह बड़ी चिंता के साथ सोचा करता था, कब देवकी का आठवां पुत्र पैदा हो और वह कब मार कर चिन्ता रहित हो जाये। उसने पहरेदारों को कड़ा आदेश दे रखा था कि ज्यों ही देवकी के गर्भ से आठवां बालक उत्पन्न हो, उसे तुरंत सूचना दी जाये।

अतः नवजात बालक के रुदन को सुन कर प्रहरी दौड़ पड़े। उन्होंने कंस के पास जाकर उसे सूचना दी- महाराज, देवकी के गर्भ से उसका आठवां पुत्र पैदा हुआ है।

कंस हाथ में खड्ग लेकर आंधी की भांति दौड़ पड़ा। उसने कारागार में वसुदेव की कोठरी में जाकर, देवकी की गोद से बालिका को झपट कर छीन लिया। वह बालिका को देख कर चिल्ला उठा- अरे यह तो बालक नहीं, बालिका है! आकाशवाणी, आकाशवाणी !!

कंस कुछ क्षणों तक सोचता रहा। फिर वह उन्मत्त की तरह बोला- बालिका हो या बालक, है तो आठवीं सन्तान। मैं इसे जीवित नहीं छोड़ंगा, नहीं छोड़ेंगा। देवकी चीख उठी। वह उठकर कंस के हाथ से बालिका को छीनने लगी। उसने बालिका को छीनते हुए बड़े ही सकरुण स्वर में कहा- भैया, तुमने मेरे सात पुत्रों की हत्या करके मेरी गोद उजाड़ दी। अब इस बालिका को तो जीवित रहने दो।

कंस निर्दयतापूर्वक देवकी को धकेलता हुआ बोला- नहीं देवकी, नहीं। यह तुम्हारी आठवीं सन्तान है। मैं इसे कदापि जीवित नहीं रहने दूंगा, कदापि जीवित नहीं रहने दूंगा।

कंस ने देवकी को धकेल कर, बालिका का एक पैर हाथ से पकड़ लिया। वह बालिका को घुमाकर, उसे एक शिला पर पटक कर मार डालना चाहता था, किन्तु बालिका आश्चर्यजनक ढंग से छूट कर आकाश में जा पहुंची। उसने आकाश में जाकर घोषणा की- पापी कंस, तेरा काल पैदा हो चुका है। अब तेरे जीवन के दिन बहुत कम रह गये हैं। तू सावधान हो जा।

कंस ने घोषणा को सुनकर विस्मय-भरी दृष्टि से आकाश की ओर देखा। आश्चर्य, उसे आकाश में बालिका के स्थान पर अष्टभुजा देवी दिखायी पड़ी। कंस के मस्तक पर पसीना निकल आया। वह टकटकी लगा कर आकाश की ओर देखने लगा, मूक बन कर देखने लगा।

अष्टभुजा देवी घोषणा करने के पश्चात् अदृश्य हो गयीं। कहते हैं, वे विन्ध्य पर्वत पर जाकर स्थापित हो गयीं। आज भी मिर्जापुर जिले में विन्ध्याचल के पास विन्ध्या पर्वत पर अष्टभुजा की मूर्ति स्थापित है। लाखों नर-नारी प्रति वर्ष उस मूर्ति का दर्शन करते हैं, सुख और आनन्द प्राप्त करते हैं।

कंस कुछ देर तक खड़ा-खड़ा सोचता रहा। उसके सामने ही देवकी करुण क्रन्दन कर रही थी। वसुदेव जी उदास मन से चुपचाप खड़े थे। कंस उन्हें सम्बोधित करता हुआ बोला- वसुदेव जी, मैंने आपके सात-सात पुत्रों की हत्या कर दी, किन्तु फिर भी मेरा मनोरथ सिद्ध नहीं हो सका। आपने भी सुना होगा, अष्टभुजा देवी ने क्या कहा-कंस, तुम्हारा काल पैदा हो चुका है। वसुदेव जी, मनुष्य सोचता कुछ है, पर होता कुछ है। आप अवश्य मुझ पर क्रोध करते होंगे। सच बात तो यह है कि मैंने जो कुछ किया, आपके और अपने कर्मों के अनुसार ही किया है। जो कुछ भी होता है, कर्मों के अनुसार ही होता है।

कंस की ज्ञान से भरी हुई वाणी को सुन कर वसुदेव जी के मन में बड़ा आश्चर्य पैदा हुआ। उन्होंने विस्मय-भरी दृष्टि से कंस की ओर देखते हुए कहा-हां कुमार, आप सच कह रहे हैं। जो घटना घटी है, मेरे कर्मों के अनुसार ही घटी है। मेरे भाग्य में ही लिखा था कि मैं सदा सन्तान के लिए तड़पता रहूं। सचमुच, आपका कोई दोष नहीं है, कोई दोष नहीं है।

वसुदेव जी के कथन को सुनने के पश्चात् कंस बड़ी तीव्र गति से कारागार से बाहर निकल गया। उसकी दशा उस मनुष्य की सी हो गयी थी जिसका सब- कुछ लुट गया हो, जिसका सब-कुछ नष्ट हो गया हो।

कंस ने अपने भवन में जाकर शीघ्र ही अपने मंत्रियों की बैठक बुलायी। उसने अपने मंत्रियों को बताया कि देवकी की गोद में पुत्र नहीं पुत्री थी। उसने जब उस पुत्री के पैर को पकड़ कर उसे शिला पर पटकने का प्रयत्न किया, तो वह उसके हाथ से छूट कर आकाश में चली गयी। उसने आकाश में अष्टभुजा देवी का रूप धारण करके घोषणा की-कंस, तुम्हारा काल पैदा हो चुका है।

कंस अपने कथन को समाप्त करता हुआ चिन्ता की लहरों में डूब गया। कुछ देर तक मन-ही-मन सोचता रहा, फिर मंत्रियों की ओर देखता हुआ बोला- यदि अष्टभुजा देवी का कथन सत्य है, तो अब मुझे क्या करना चाहिए?

मंत्रियों ने सोचते हुए उत्तर दिया- महाराज, अब तो एक ही उपाय है। एक सप्ताह में मथुरा मण्डल में जितने बालक पैदा हुए हैं, उन सबकी हत्या कर दी जाये।

कंस को मंत्रियों की राय अच्छी लगी। वह आवेश में बोल उठा- ऐसा ही होना चाहिए, ऐसा ही होना चाहिए।

कंस अपने कथन को समाप्त करता हुआ तीव्र गति से अपने अंतःपुर में चला गया। उसके पश्चात् तो सम्पूर्ण मथुरा मंडल में नवजात बालकों के लिए प्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया। इतने बालकों की हत्या की गयी थी कि यमुना का पानी भी लाल हो गया। फिर भी कंस का मनोरथ सिद्ध नहीं हो सका और वह भगवान श्रीकृष्ण का पता तक नहीं पा सका। भगवान के समक्ष किसी की भी कुछ नहीं चलती। होता वही है, जो भगवान चाहते हैं।

महर्षि सान्दीपनि आश्रम में श्रीकृष्ण की शिक्षा-दीक्षा की कथा

हे राजन्। वसुदेव जी ने अपने पुरोहित गर्गाचार्य तथा दूसरे ब्राह्मणों से दोनों पुत्रों का विधिपूर्वक द्विजाति-समुचित यज्ञोपवीत संस्कार करवाया॥ २६॥ उन्होंने विविध प्रकारके वस्त्र और आभूषणों से ब्राह्मणोंका सत्कार करके उन्हें बहुत-सी दक्षिणा तथा सवत्स गौएँ दान दी । सभी गौएँ के गले में सोने की माला थीं तथा और भी बहुतसे आभूषणों एवं रेशमी वस्त्रों की मालाओं से विभूषित थीं ॥ २७ ॥ महामति वसुदेव जी ने भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम जी के जन्म नक्षत्र में जितनी गौएँ मन-ही-मन संकल्प करके दी थीं, उन्हें पहले कंस ने अन्याय से छीन लिया था। अब उनका स्मरण करके उन्होंने ब्राह्मणों को वे फिर से दीं ॥ २८ ॥ इस प्रकार यदुवंश के आचार्य गर्ग जी से संस्कार कराकर बलराम जी और भगवान् श्रीकृष्ण द्विजत्व को प्राप्त हुए। उनका ब्रह्मचर्य व्रत अखण्ड तो था ही, अब उन्होंने गायत्रीपूर्वक अध्ययन करने के लिये उसे नियमतः स्वीकार किया ॥ २९ ॥ श्रीकृष्ण और बलराम जगत् के एकमात्र स्वामी हैं। सर्वज्ञ हैं। सभी विद्याएँ उन्हीं से निकली हैं। उनका निर्मल ज्ञान स्वतः सिद्ध है। फिर भी उन्होंने मनुष्य की लीला करके उसे छिपा रखा था ॥३०॥

अब वे दोनों गुरुकुल में निवास करने एवं महर्षि सान्दीपनि जी से वेद अध्ययन की इच्छा से **काश्यपगोत्री सान्दीपनि मुनि** के आश्रम में गये, जो अवन्तीपुर (उज्जैन) में स्थित है॥ ३१॥ वे दोनों भाई विधिपूर्वक गुरुजीके पास रहने लगे। उस समय वे बड़े ही सुसंयत, अपनी चेष्टाओंको सर्वथा नियमित रखे हुए थे। गुरुजी तो उनका आदर करते ही थे, भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी भी गुरुकी उत्तम सेवा कैसे करनी चाहिये, इसका आदर्श लोगों के सामने रखते हुए बड़ी भक्ति से इष्टदेव के समान उनकी सेवा करने लगे ॥ ३२॥ गुरुवर सान्दीपनि जी उनकी शुद्धभाव से युक्त सेवा से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने

दोनों भाइयों को छहों अंग और उपनिषदों के सहित सम्पूर्ण वेदों की शिक्षा दी ॥ ३३ ॥ इनके सिवा मन्त्र और देवताओं के ज्ञान के साथ धनुर्वेद, मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र, मीमांसा आदि, वेदोंका तात्पर्य बतलानेवाले शास्त्र, तर्कविद्या (न्यायशास्त्र) आदि की भी शिक्षा दी। साथ ही सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध और आश्रय-इन छः भेदोंसे युक्त राजनीति विद्या का भी अध्ययन कराया ॥ ३४ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम सारी विद्याओं के प्रवर्तक हैं। इस समय केवल श्रेष्ठ मनुष्य के तदवत् व्यवहार करते हुए ही वे अध्ययन कर रहे थे। उन्होंने गुरुजी के केवल एक बार कहने मात्र से सारी विद्याएँ सीख लीं ॥ ३५ ॥ केवल चौंसठ दिन- रात में ही संयमी शिरोमणि दोनों भाइयों ने चौंसठों कलाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया।

चौंसठ कलाएँ ये हैं-

१ गानविद्या, २ वाद्य-भाँति-भाँतिके बाजे बजाना, ३ नृत्य, ४ नाट्य, ५ चित्रकारी, ६ बेल-बूटे बनाना, ७ चावल और पुष्पादिसे पूजाके उपहारकी रचना करना, ८ फूलोंकी सेज बनाना, ९ दाँत, वस्त्र और अंगोंको रंगना, १० मणियोंकी फर्श बनाना, ११ शय्या-रचना, १२ जलको बाँध देना, १३ विचित्र सिद्धियाँ दिखलाना, १४ हार-माला आदि बनाना, १५ कान और चोटीके फूलोंके गहने बनाना, १६ कपड़े और गहने बनाना, १७ फूलोंके आभूषणोंसे श्रृंगार करना, १८ कानोंके पत्तोंकी रचना करना, १९ सुगन्धित वस्तुएँ- इत्र, तैल आदि बनाना, २० इन्द्रजाल - जादूगरी, २१ चाहे जैसा वेष धारण कर लेना, २२ हाथकी फुर्तीके काम, २३ तरह-तरहकी खानेकी वस्तुएँ बनाना, २४ तरह-तरहके पीनेके पदार्थ बनाना, २५ सूईका काम, २६ कठपुतली बनाना, नचाना, २७ पहेली, २८ प्रतिमा आदि बनाना, २९ कूटनीति, ३० ग्रन्थोंके पढ़ानेकी चातुरी, ३१ नाटक, आख्यायिका आदिकी रचना करना, ३२ समस्यापूर्ति करना, ३३ पट्टी, बेंत, बाण आदि बनाना, ३४ गलीचे, दरी आदि बनाना, ३५ बढ़ईकी कारीगरी, ३६ गृह आदि बनानेकी कारीगरी, ३७ सोने, चाँदी आदि धातु तथा हीरे-पन्ने आदि रत्नोंकी परीक्षा, ३८ सोना-चाँदी आदि बना लेना, ३९ मणियोंके रंगको पहचानना, ४० खानोंकी पहचान, ४१ वृक्षोंकी चिकित्सा, ४२ भेड़ा, मुर्गा, बटेर आदिको लड़ानेकी रीति, ४३ तोता मैना आदिकी बोलियाँ बोलना, ४४ उच्चाटनकी विधि, ४५ केशोंकी सफाईका कौशल, ४६ मुट्ठीकी चीज या मनकी बात बता देना, ४७ म्लेच्छ-काव्योंका समझ लेना, ४८ विभिन्न देशोंकी भाषाका ज्ञान, ४९ शकुन-अपशकुन जानना, प्रश्नोंके उत्तरमें शुभाशुभ बतलाना, ५० नाना प्रकारके मातृकायन्त्र बनाना, ५१ रत्नोंको नाना प्रकारके आकारोंमें काटना, ५२ सांकेतिक भाषा

बनाना, ५३ मनमें कटकरचना करना, ५४ नयी-नयी बातें निकालना, ५५ छलसे काम निकालना, ५६ समस्त कोशोंका ज्ञान, ५७ समस्त छन्दोंका ज्ञान, ५८ वस्त्रोंको छिपाने या बदलनेकी विद्या, ५९ द्यूत क्रीड़ा, ६० दूरके मनुष्य या वस्तुओंका आकर्षण कर लेना, ६१ बालकोंके खेल, ६२ मन्त्रविद्या, ६३ विजय प्राप्त करानेवाली विद्या, ६४ वेताल आदिको वशमें रखनेकी विद्या।

इस प्रकार अध्ययन समाप्त होनेपर उन्होंने सान्दीपनि मुनि से प्रार्थना की , आपकी जो इच्छा हो, गुरुदक्षिणा माँग लें' ॥ ३६ ॥ महाराज ! सान्दीपनि मुनि ने उनकी अद्भुत महिमा और अलौकिक बुद्धिका अनुभव कर लिया था। इसलिये उन्होंने अपनी पत्नी से सलाह करके यह गुरुदक्षिणा माँगी कि 'प्रभासक्षेत्र में हमारा बालक समुद्रमें डूबकर मर गया था, उसे तुमलोग ला दो' ॥ ३७॥

बलरामजी और श्रीकृष्णका पराक्रम अनन्त था। दोनों ही महारथी थे। उन्होंने 'बहुत अच्छा' कहकर गुरुजी की आज्ञा स्वीकार की और रथ पर सवार होकर प्रभासक्षेत्र में गये। वे समुद्रतट पर जाकर क्षणभर बैठे रहे। उस समय यह जानकर कि ये साक्षात् परमेश्वर हैं, अनेक प्रकारकी पूजा सामग्री लेकर समुद्र उनके सामने उपस्थित हुआ ॥ ३८ ॥

भगवान् ने समुद्र से कहा- 'समुद्र ! तुम यहाँ अपनी बड़ी-बड़ी तरंगों से हमारे जिस गुरुपुत्र को बहा ले गये थे, उसे लाकर शीघ्र हमें दे दो' ॥ ३९॥

मनुष्य वेषधारी समुद्र ने कहा- 'देवाधिदेव श्रीकृष्ण! मैंने उस बालक को नहीं लिया है। मेरे जल में पंचजन नामक एक बड़ा भारी दैत्य जातिका असुर शंख के रूप में रहता है। अवश्य ही उसी ने वह बालक चुरा लिया होगा' ॥ ४० ॥

समुद्र की बात सुनकर भगवान् तुरंत ही जलमें जा घुसे और शंखासुर को मार डाला। परन्तु वह बालक उसके पेट में नहीं मिला ॥ ४१ ॥

तब उसके शरीर का शंख लेकर भगवान् रथ पर चले आये। वहाँ से बलरामजी के साथ श्रीकृष्ण ने यमराज को प्रिय पुरी संयमनी में जाकर अपना शंख बजाया। शंख का शब्द सुनकर सारी प्रजा का शासन करने वाले यमराज ने उनका स्वागत किया और भक्तिभाव से भरकर विधिपूर्वक उनकी बहुत बड़ी पूजा की। उन्होंने नम्रता से झुककर समस्त प्राणियों के हृदय में विराजमान सच्चिदानन्द-स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण से कहा- 'लीला से ही मनुष्य बने हुए सर्वव्यापक परमेश्वर! मैं आप दोनों की क्या सेवा करूँ?' ॥ ४२-४४॥

श्रीभगवान् ने कहा- 'यमराज! यहाँ अपने कर्मबन्धन के अनुसार मेरा गुरुपुत्र लाया गया है। तुम मेरी आज्ञा स्वीकार करो और उसके कर्म पर ध्यान न देकर उसे मेरे पास ले आओ ॥ ४५ ॥

यमराज ने 'जो आज्ञा' कहकर भगवान् का आदेश स्वीकार किया और उनका गुरुपुत्र ला दिया। तब यदुवंश शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी उस बालक को लेकर उज्जैन लौट आये और उसे अपने गुरुदेव को सौंपकर कहा कि 'आप और जो कुछ चाहें, माँग लें' ॥ ४६ ॥

गुरुजी ने कहा- 'बेटा! तुम दोनों ने भलीभाँति गुरुदक्षिणा दी। अब और क्या चाहिये ? जो तुम्हारे जैसे पुरुषोत्तमों का गुरु है, उसका कौन-सा मनोरथ अपूर्ण रह सकता है? ॥ ४७ ॥ वीरो ! अब तुम दोनों अपने घर जाओ। तुम्हें लोकों को पवित्र करनेवाली कीर्ति प्राप्त हो। तुम्हारी पढ़ी हुई विद्या इस लोक और परलोक में सदा नवीन बनी रहे, कभी विस्मृत न हो' ॥ ४८ ॥ बेटा परीक्षित् ! फिर गुरुजी से आज्ञा लेकर वायु के समान वेग और मेघ के समान शब्दवाले रथ पर सवार होकर दोनों भाई मथुरा लौट आये ॥ ४९ ॥ मथुरा की प्रजा बहुत दिनोंतक श्रीकृष्ण और बलराम को न देखने से अत्यन्त दुःखी हो रही थी। अब उन्हें आया हुआ देख सब के सब परमानन्द में मग्न हो गये, मानो खोया हुआ धन मिल गया हो ॥ ५० ॥

कथा श्लोक सन्दर्भ

श्रीशुक उवाच

अथ शूरसुतो राजन् पुत्रयोः समकारयत् । पुरोधसा ब्राह्मणैश्च यथावद् द्विजसंस्कृतिम् ॥ १
तेभ्योऽदाद्दक्षिणा गावो रुक्ममालाः स्वलंकृताः । स्वलंकृतेभ्यः संपूज्य सवत्साः क्षौममालिनीः ॥२
याः कृष्णरामजन्मर्क्षे मनोदत्ता महामतिः । ताश्चाददादनुस्मृत्य कंसेनाधर्मतो हृताः ॥ ३
ततश्च लब्धसंस्कारौ द्विजत्वं प्राप्य सुव्रतौ। गर्गाद् यदुकुलाचार्याद् गायत्रं व्रतमास्थितौ ।।४
प्रभवौ सर्वविद्यानां सर्वज्ञौ जगदीश्वरौ। नान्यसिद्धामलज्ञानं गूहमानौ नरेहितैः ॥ ५
अथो गुरुकुले वासमिच्छन्तावुपजग्मतुः । काश्यं सान्दीपनिं नाम ह्यवन्तीपुरवासिनम् ॥ ६
यथोपसाद्य तौ दान्तौ गुरौ वृत्तिमनिन्दिताम् । ग्राहयन्तावुपेतौ स्म भक्त्या देवमिवादृतौ ॥७
तयोर्द्विजवरस्तुष्टः शुद्धभावानुवृत्तिभिः । प्रोवाच वेदानखिलान् सांगोपनिषदो गुरुः ॥८
सरहस्यं धनुर्वेदं धर्मान् न्यायपथांस्तथा । तथा चान्वीक्षिकीं विद्यां राजनीतिं च षड्विधाम् ॥ ९
सर्वं नरवरश्रेष्ठौ सर्वविद्याप्रवर्तकौ । सकृन्निगदमात्रेण तौ संजगृहतुर्नृप ॥ १०

अहोरात्रैश्चतुःषष्ट्या संयत्तौ तावतीः कलाः । गुरुदक्षिणयाऽऽचार्यं छन्दयामासतुर्नृप ।॥ ११

द्विजस्तयोस्तं महिमानमद्भुतं

संलक्ष्य राजन्नतिमानुषीं मतिम्।

सम्मन्त्र्य पत्न्या स महार्णवे मृतं

बालं प्रभासे वरयाम्बभूव ह ॥ १२

तथेत्यथारुह्य महारथौ रथं

प्रभासमासाद्य दुरन्तविक्रमौ।

वेलामुपव्रज्य निषीदतु: क्षणं

सिन्धुर्विदित्वार्हणमाहरत्तयोः ॥१३

तमाह भगवानाशु गुरुपुत्रः प्रदीयताम्। योऽसाविह त्वया ग्रस्तो बालको महतोर्मिणा ।।१४

समुद्र उवाच

नैवाहार्षमहं देव दैत्यः पंचजनो महान्। अन्तर्जलचरः कृष्ण शंखरूपधरोऽसुरः ॥१५

आस्ते तेनाहृतो नूनं तच्छ्रुत्वा सत्वरं प्रभुः । जलमाविश्य तं हत्वा नापश्यदुदरेऽर्भकम् ॥१६

तदंगप्रभवं शंखमादाय रथमागमत्। ततः संयमनीं नाम यमस्य दयितां पुरीम् ॥१७

गत्वा जनार्दनः शंखं प्रदध्मौ सहलायुधः । शंखनिर्ह्रादमाकर्ण्य प्रजासंयमनो यमः ॥१८

तयोः सपर्यां महतीं चक्रे भक्त्युपबृंहिताम्। उवाचावनतः कृष्णं सर्वभूताशयालयम् ।

लीलामनुष्य हे विष्णो युवयोः करवाम किम् ॥१९

श्रीभगवानुवाच

गुरुपुत्रमिहानीतं निजकर्मनिबन्धनम्। आनयस्व महाराज मच्छासनपुरस्कृत:॥२०

तथेति तेनोपानीतं गुरुपुत्रं यदूत्तमौ दत्त्वा स्वगुरवे भूयो वृणीष्वेति तमूचतुः॥२१

गुरुरुवाच

सम्यक् संपादितो वत्स भवद्भ्यां गुरुनिष्क्रयः । को नु युष्मद्विधगुरोः कामानामवशिष्यते ।।२२

गच्छतं स्वगृहं वीरौ कीर्तिर्वामस्तु पावनी। छन्दांस्ययातयामानि भवन्त्विह परत्र च ॥ २३

गुरुणैवमनुज्ञातौ रथेनानिलरंहसा । आयातौ स्वपुरं तात पर्जन्यनिनदेन वै ॥२४

समनन्दन् प्रजाः सर्वा दृष्ट्वा रामजनार्दनौ ।अपश्यन्त्यो बह्वहानि नष्टलब्धधना इव ॥२५

------------------------------------00000--

इकाई ६

श्रीमद्भगवद्गीता के अध्यायों में वर्णित विषयों का संक्षिप्त परिचय एवं प्रवचनाभ्यास

श्रीमद्भगवद्गीता के १-३ अध्यायों का परिचय

समस्त मानव जाति का कल्याणकारक धर्मग्रंथ ऋक्,यजु,सामाथर्व चारों वेद हैं, वेदों का सार उपनिषद् और उपनिषदों का सार गीता है।इस प्रकार गीता सभी ग्रंथों का सार है। इसीलिए श्रीमद्भगवद्गीता सभी मानव प्राणियों के लिए सर्वमान्य उपकारक ग्रंथ है। इसे वेद और उपनिषदों का पॉकेट संस्करण भी कह सकते हैं। महाभारत के १८ अध्यायों में से यह भगवद्गीता भीष्म पर्व का हिस्सा है । गीता में भी कुल १८ अध्याय हैं। १८ अध्यायों की कुल श्लोक संख्या ७०० हैं। आओ छात्रों ,जानते हैं कि गीता के १८ अध्यायों में मुख्य रूप से क्या क्या विषय वर्णित हैं?

१. **प्रथमोऽध्याय-** यह अध्याय"अर्जुनविषादयोग" नाम से जाना जाता है। इस अध्याय में दोनों सेनाओं के प्रधान-प्रधान शूरवीरों की गणना, सामर्थ्य और शंख ध्वनि का कथन, अर्जुन द्वारा सेना-निरीक्षण का प्रसंग और अपने ही बंधु-बांधवों को सामने खड़ा देखकर मोह से व्याप्त हुए अर्जुन के कायरता, स्नेह और शोकयुक्त वचन है। इसमें अर्जुन कहता है कि यदि मैं अपने ही बंधुओं को मारकर विजय भी प्राप्त कर लेता हूं तो यह मुझे सुख नहीं पश्चाताप ही देगी।

२. **द्वितीयाध्याय-** "सांख्ययोग" नाम से है। इसमें श्री कृष्ण कहते हैं कि इस असमय यह बातें करना उचित नहीं, क्योंकि अब तो सामने युद्ध थोप ही दिया गया है। अब यदि तुम नहीं लड़ोंगे तो मारे जाओगे। अर्जुन हर तरह से युद्ध को छोड़कर जाने की बात कहता है तब श्रीकृष्ण कहते हैं कि अब युद्ध से विमुख होना नपुंसकता और कायरता है। इसी चर्चा में श्रीकृष्ण अर्जुन को आत्मा की अमरता के बारे में बताते हैं और कहते हैं कि आत्मा का कभी वध नहीं किया जा सकता और तू जिनके मारे जाने का शोक करने की बात कर रहा है वह उनका शरीर है जिसे आज नहीं तो कल मर ही जाना है। इसीलिए जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दुख को समान समझकर, उसके बाद युद्ध के लिए तैयार हो जा। इसी अध्याय में श्रीकृष्ण संख्ययोग और स्थिरबुद्धि पुरुष के लक्षण का वर्णन करते हैं।

३. **तृतीयाध्याय-** "कर्मयोग" नाम से है। इसमें ज्ञानयोग और कर्मयोग के अनुसार जीवन में अनासक्त भाव से नियत कर्म करने की श्रेष्ठता का निरूपण किया गया है। इसमें कर्मों का गंभीर विवेचन

किया गया है। अज्ञानी और ज्ञानवान के लक्षण तथा राग-द्वेष से रहित होकर कर्म करने के लिए प्रेरणा की बातें कही गई है। इस अध्याय में ही हिन्दू धर्म के कर्म के सिद्धांत का निचोड़ लिखा हुआ है। इससे ही यह प्रकट होता है कि हिन्दू धर्म कर्मवादी धर्म है भाग्यवादी नहीं। श्रीकृष्ण कहते हैं कि वास्तव में सम्पूर्ण कर्म सब प्रकार से प्रकृति के गुणों द्वारा किए जाते हैं, जो कि कार्य और कारण की एक श्रृंखला है।

प्रथमोऽध्यायः

धृतराष्ट्र उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः । मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच ।

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥१.२॥

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् । व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥ १.३ ॥

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥१.४॥

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।पुरुजित् कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः ॥१.५॥

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान ।सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥१.६॥

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं ब्रवीमि ते ॥१.७॥

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः । अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिर्जयद्रथः ॥ १.८ ॥

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः । नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥१.९ ॥

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् । पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥ १.१० ॥

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः । भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥ १.११ ॥

तस्य सञ्जनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः । सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥ १.१२ ॥

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः । सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥१.१३ ॥

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ । माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ॥ १.१४ ॥

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः । पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः ॥ १.१५ ॥

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १.१६ ॥

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः । धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥ १.१७ ॥

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते । सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान्दध्मुः पृथक्पृथक् ॥ १.१८ ॥

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् । नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥ १.१९ ॥

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्कपिध्वजः । प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ॥ १.२० ॥

हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।

अर्जुन उवाच —

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥ १.२१ ॥

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् । कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे ॥ १.२२ ॥

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः । धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥ १.२३ ॥

सञ्जय उवाच —

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत । सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ १.२४ ॥

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् । उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति ॥ १.२५ ॥

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान् । आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ॥ १.२६ ॥

श्वशुरान्सुहृदश्चैवसेनयोरुभयोरपि । तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान् ॥ १.२७ ॥

कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ।

अर्जुन उवाच —

दृष्ट्वेमान्स्वजनान्कृष्ण युयुत्सून्समुपस्थितान् ॥ १.२८ ॥

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति । वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥ १.२९ ॥

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते । न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥ १.३० ॥

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव । न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥ १.३१ ॥

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च । किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ १.३२ ॥

येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च । त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥ १.३३ ॥ आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः । मातुलाःश्वशुराः पौत्राः स्यालाः सम्बन्धिनस्तथा ॥ १.३४ ॥

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन । अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥ १.३५ ॥

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन । पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥ १.३६ ॥

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्सबान्धवान् । स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥ १.३७ ॥

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः । कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥ १.३८ ॥

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् । कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ १.३९ ॥

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः । धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥ १.४० ॥

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः । स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसङ्करः ॥ १.४१ ॥

सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च । पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥ १.४२ ॥

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकैः । उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥ १.४३ ॥

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन । नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ १.४४ ॥

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् । यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥ १.४५ ॥

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः । धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥ १.४६ ॥

सञ्जय उवाच —

एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् । विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥ १.४७ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णर्जुनसंवादे अर्जुनविषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥

द्वितीयोऽध्यायः

सञ्जय उवाच —

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् । विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ २.१ ॥

श्रीभगवानुवाच —

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् । अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ २.२ ॥

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते । क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥ २.३ ॥

अर्जुन उवाच —

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन । इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥ २.४ ॥

गुरूनहत्वा हि महानुभावान् श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।

हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुञ्जीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान् ॥ २.५ ॥

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।

यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥ २६. ॥

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ।

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥२.७ ॥

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।

अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥ २.८ ॥

सञ्जय उवाच —

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तपः । न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥ २.९ ॥

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत । सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ॥ २.१० ॥

श्रीभगवानुवाच —

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे । गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥ २.११ ॥

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः । न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥ २.१२ ॥

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा । तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ २.१३ ॥

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः । आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥२.१४॥

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ । समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ २.१५ ॥

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः । उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ २.१६ ॥

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् । विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥ २.१७ ॥

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः । अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥ २.१८ ॥

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् । उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥ २.१९ ॥

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वाभविता वा न भूयः ।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ २.२० ॥

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् । कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥ २.२१ ॥

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥ २.२२ ॥

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः । न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥ २.२३ ॥

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च । नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥ २.२४ ॥

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते । तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥ २.२५ ॥

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् । तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ॥ २.२६ ॥

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च । तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २.२७ ॥

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत । अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ २.२८ ॥

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ।

आश्चर्यवच्चैनमन्यः श्रृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥ २.२९ ॥

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत । तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २.३० ॥

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि । धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्त्रियस्य न विद्यते ॥ २.३१ ॥

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् । सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥ २.३२ ॥

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं सङ्ग्रामं न करिष्यसि । ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हत्वा पापमवाप्स्यसि ॥ २.३३ ॥

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् । सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ २.३४ ॥

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः । येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥ २.३५ ॥

अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः । निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥ २.३६ ॥

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् । तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ २.३७ ॥

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ । ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥ २.३८ ॥

एषा तेऽभिहिता साङ्ख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां श्रृणु । बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥ २.३९ ॥

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते । स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥ २.४० ॥

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन । बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥ २.४१ ॥

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः । वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥ २.४२ ॥

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् । क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥ २.४३ ॥

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् । व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥ २.४४ ॥

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन । निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥ २.४५ ॥

यावानर्थ उदपाने सर्वतःसम्प्लुतोदके । तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ २.४६ ॥

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन । मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥ २.४७ ॥

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय । सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥ २.४८ ॥

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय । बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥ २.४९ ॥

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते । तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥ २.५० ॥

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः । जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥ २.५१ ॥

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति । तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥ २.५२ ॥

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला । समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥ २.५३ ॥

अर्जुन उवाच —

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव । स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥ २.५४ ॥

श्रीभगवानुवाच —

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् । आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ २.५५ ॥

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः । वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ २.५६ ॥

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् । नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ २.५७ ॥

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः । इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ २.५८ ॥

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः । रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ २.५९ ॥

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः । इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥ २.६० ॥

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः । वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ २.६१ ॥

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते । सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥ २.६२ ॥

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः । स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ २.६३ ॥

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् । आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥ २.६४ ॥

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते । प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥ २.६५ ॥

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना । न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥ २.६६ ॥

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते । तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥ २.६७ ॥

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः । इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ २.६८ ॥

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी । यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ २.६९ ॥

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।

तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥ २.७० ॥

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः । निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति ॥ २.७१ ॥

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति । स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥ २.७२ ॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे साङ्ख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

तृतीयोऽध्यायः

अर्जुन उवाच —

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन । तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥ ३.१ ॥

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे । तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥ ३.२ ॥

श्रीभगवानुवाच —

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ । ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥ ३.३ ॥

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते । न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥ ३.४ ॥

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् । कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ ३.५ ॥

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् । इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ ३.६ ॥

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन । कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ ३.७ ॥

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः । शरीरयात्रापि च ते न प्रसिध्येदकर्मणः ॥ ३.८ ॥

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः । तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ॥ ३.९ ॥

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः । अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥ ३.१० ॥

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः । परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ ३.११ ॥

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः । तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥ ३.१२ ॥

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः । भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥ ३.१३ ॥

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः । यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥ ३.१४ ॥

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् । तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥ ३.१५ ॥

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः । अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥ ३.१६ ॥

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः । आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ ३.१७ ॥

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन । न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ ३.१८ ॥

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर । असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ ३.१९ ॥

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः । लोकसङ्ग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि ॥ ३.२० ॥

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः । स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ ३.२१ ॥

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन । नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥ ३.२२ ॥

यदि ह्यहं न वर्तेय जातु कर्मण्यतन्द्रितः । मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ ३.२३ ॥

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् । सङ्करस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥ ३.२४ ॥

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत । कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसङ्ग्रहम् ॥ ३.२५ ॥

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम् । जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥ ३.२६ ॥

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः । अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥ ३.२७ ॥

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः । गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ॥ ३.२८ ॥

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु । तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत् ॥ ३.२९ ॥

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा । निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥ ३.३० ॥

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः । श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः ॥ ३.३१ ॥

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् । सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥ ३.३२ ॥

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि । प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥ ३.३३ ॥

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ । तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥ ३.३४ ॥

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् । स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ ३.३५ ॥

अर्जुन उवाच —

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः । अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥ ३.३६ ॥

श्रीभगवानुवाच —

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः। महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥ ३.३७ ॥

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च। यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥ ३.३८ ॥

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा। कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥ ३.३९ ॥

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते। एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥ ३.४० ॥

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ। पाप्मानं प्रजहिह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ ३.४१ ॥

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥ ३.४२ ॥

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना। जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥ ३.४३ ॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां, योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः

इकाई ७

वैदिक प्रवचनों में सहायक शिक्षाप्रद लौकिक कथाएँ

{हितोपदेश-मित्रलाभ ग्रन्थ के दो शिक्षाप्रद कथा}

प्रथम कथा-

राजा सुदर्शन एवं उनके पुत्रों की कथा

अस्ति भागीरथीतीरे पाटलिपुत्रनामधेयं नगरम् ---

भागीरथी के तटपर पाटलिपुत्र (पटना) नाम का नगर है। वहाँ सुदर्शन नाम का राजा राज्य करता था, उसने एक समय किसी से पढ़े गये इस आशय के दो श्लोक सुनें।

(१) **"अनेकसंशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम्।सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव स:"**॥ अर्थ- अनेक संशयों को मिटाने वाला, परोक्ष पदार्थ को दिखाने वाला, सभी का नेत्र 'शास्त्र' जिसके पास नहीं है वह अन्धा है।

(२) **यौवनं धनसम्पत्ति: प्रभुत्वमविवेकिता एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्"** यौवन, धन, प्रभुता और अविवेक इनमें से कोई एक भी अनर्थ के लिए पर्याप्त है फिर जहाँ चारों हों. वहाँ कहना ही क्या है।' यह सुनकर राजा ने अपने कुमार्गगामी मूर्खपुत्रों को देखकर पण्डितों की सभा की और उन्को विद्वान बनाने का प्रश्न पण्डितों के सामने रखा। उनमें से विष्णुशर्मा नाम के एक पण्डित ने कहा मैं आपके इन पुत्रों को छः मास में विद्वान और नीतिज्ञ बना दूँगा। राजा ने यह बात सुनकर अपने पुत्रों को उनके अधीन कर दिया।

विष्णु शर्मा ने राजप्रसाद को ही गुरुकुल बना दिया और वहीं राजपुत्रों को एकत्र करके नीति की शिक्षा देनी प्रारम्भ की। उन्होनें इस प्रकार से कथा प्रारम्भ की।

संयोजयति विद्यैव नीचगापि नरं सरित् । समुद्रमिव दुर्धर्षं नृपं भाग्यमतः परम् ॥ १ ॥

जैसे नीच अर्थात् तुच्छ तृणादि से मिलने वाली नदी उस तृणादिक को अथाह समुद्र से जा मिलाती है, उसी प्रकार विद्या भी नीच पुरुष को प्राप्त (वश) होकर राजा से जा मिलाती है, फिर सौभाग्य का उदय कराती है ॥ १ ॥

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् । पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम् ॥ २ ॥

विद्या मनुष्य को नम्रता देती है और नम्रता से योग्यता, योग्यतासे धन, 'धन से धर्म, फिर धर्म से सुख पाता है ॥ २ ॥

विद्या शस्त्रस्य शास्त्रस्य द्वे विद्ये प्रतिपत्तये । आद्या हास्याय वृद्धत्वे द्वितीयाद्रियते सदा ॥ ३॥

शस्त्रविद्या और शास्त्रविद्या ये दोनों आदर कराने वाली हैं परंतु पहली अर्थात् शस्त्रविद्या बुढापे में "पुरुषार्थ न होने से" हँसी कराती है और दूसरी अर्थात् शास्त्रविद्या सदैव आदर कराती है ॥ ३ ॥

यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत् । कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते ॥ ४ ॥

जैसे मृत्तिका के कोरे बर्तन में जिस वस्तु का संस्कार पहले हो जाता है और पीछे वह उसमें से नहीं जाता है; उसी प्रकार मैं इस हितोपदेश ग्रन्थ में कथा के बहाने से बालकों के लिये नीति कहता हूँ ॥४॥

मित्रलाभः सुहृद्भेदो विग्रहः संधिरेव च । पञ्चतन्त्रात्तथाऽन्यस्माद्ग्रन्थादाकृष्य लिख्यते ॥ ५॥

पंचतन्त्र तथा अन्य अन्य नीतिशास्त्र के ग्रन्थों से आशय लेकर, १ मित्रलाभ, २ सुहृद्भेद, ३ विग्रह और ४ सन्धि, ये चार भाग बनाये जाते हैं ॥ ५ ॥

१ यहां मनुष्य और तृण की, विद्या और नदी की, समुद्र और राजा की समानता

है. २ बालकों का बचपन कोरे बर्तन के समान है. यदि इसमें कहानियों के बहाने से विद्या का संस्कार हो जाय तो वे जन्म पर्यंत शास्त्र से विमुख न होंगे ।

द्वितीय कथा-

काक-मृग-कूर्म एवं चूहा की कथा-

गोदावरी के तीर पर एक बड़ा सैमर का पेड है। वहाँ अनेक दिशाओं के देशों से आकर रात में पक्षी बसेरा करते हैं। एक दिन जब थोड़ी रात रह गई ओर भगवान कुमुदिनी के नायक चंद्रमा ने अस्ताचल की चोटी की शरण ली तब लघुपतनक नामक काग जगा और सामने से यमराज के समान एक बहेलिए को आते हुए देखा, उसको देखकर सोचने लगा, कि आज प्रातःकाल ही बुरे का मुख देखा है। मैं नहीं जानता हूँ कि क्या बुराई दिखावेगा।

श्लोक – 1

शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च। दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम।।

सहस्त्रों शोक की और सैकड़ों भय की बातें मूर्ख पुरुष को दिन पर दिन दुख देती है, और पण्डित को नहीं।

व्याध की चाल-

फिर उस व्याध ने चावलों की कनकी को बिखेर कर जाल फैलाया और खदु वहाँ छुप कर बैठ गया। उसी समय में परिवार सहित आकाश में उड़ते हुए चित्रग्रीव नामक कबूतरों के राजा ने चावलों की कनकी को देखा, फिर कपोतराज चावल के लोभी कबूतरों से बोला– इस निर्जन वन में चावल की कनकी कहाँ से आई ? पहले इसका निश्चय करो। मैं इसको कल्याणकारी नहीं देखता हूँ। अवश्य इन चावलों की कनकी के लोभ से हमारी बुरी गति हो सकती है।

श्लोक – 2

सुजीर्णमन्नं सुविचक्षणः सुतः,

सुशासिता स्त्री नृपतिः सुसेवितः।

सुचिन्त्य चोक्तं सुविचार्य यत्कृतं,

सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम्।।

अच्छी रीति से पका हुआ भोजन, विद्यावान पुत्र, सुशिक्षित अर्थात आज्ञाकारिणी स्त्री, अच्छे प्रकार से सेवा किया हुआ राजा, सोच कर कहा हुआ वचन, और विचार कर किया हुआ काम ये बहुत काल तक भी नहीं बिछड़ते हैं।

घमंडी कबूतर-

यह सुनकर एक कबूतर घमंड से बोला ,""अजी, तुम क्या कहते हो

श्लोक – 3, 4 और 5

वृद्धानां वचनं ग्राह्यमापत्काले ह्युपस्थिते। सर्वत्रैवं विचारे तु भोजनेऽप्यप्रवर्तनम्।।

जब आपत्तिकाल आए तब वृद्धों की बात माननी चाहिए, परंतु उस समय सब जगह मानने से तो भोजन भी न मिले।

शंकाभिः सर्वमाक्रान्तमन्नं पानं च भूतले। प्रवृत्तिः कुत्र कर्त जीवितव्यं कथं नू वा ?

इस पृथ्वी तल पर अन्न और पान संदेहोंसे भरा है, किस वस्तु में खाने- पीने की ईच्छा करे या कैसे जिये?

ईर्ष्यी घृणी त्वसंतुष्टः क्रोधनो नित्यशङ्कितः।परभाग्योपजीवी च षडेते दुखभागिनः।।

ईष्या करने वाला, घृणा करने वाला, असंतोषी, क्रोधी, सदा संदेह करने वाला और पराये आसरे जीने वाला ये छः प्रकार के मनुष्य हमेशा दुखी होते हैं।

कबूतरों द्वारा बात ना मानना-

यह सुनकर भी सब कबुतर बहेलिये के चावल के कण जहाँ छीटे थे, वहाँ बैठ गये।

श्लोक – 6 से 8

सुमहान्त्यपि शास्त्राणि धारयन्तो बहुश्रुतः।छेत्तारः संशयानां च क्लिश्यन्ते लोभमोहितः।।

क्योंकि अच्छे बड़े- बड़े शास्त्रों को पढ़ने तथा सुनने वाले और संदेहों को दूर करने वाले भी लोभ के वश में पड़ कर दुख भोगते हैं।

लोभात्क्रोधः प्रभवति लोभात्कामः प्रजायते। लोभान्मोहश्च नाशश्च लोभः पापस्य कारणम।

लोभ से क्रोध उत्पन्न होता है, लोभ से विषय भोग की इच्छा होती है और लोभ से मोह और नाश होता है, इसलिए लोभ ही पाप की जड़ है।

असंभव हेममृगस्य जन्म ,

तथापि रामो लुलुभे मृगाय।

प्रायः समापन्नविपत्तिकाले,

धियोऽपि पुंसां मलिना भवन्ति।।

सोने के मृग का होना असंभव है, तब भी रामचंद्रजी सोने के मृग के पीछे लुभा गये, इसलिये विपत्तिकाल आने पर महापुरुषों की बुद्धियाँ भी बहुधा मलिन हो जाती है।

लोभ में फंसना-

दाना पाने के लालच से उतरे सब कबूतर जाल में फँस गये और फिर जिसके वचन से वहाँ उतरे से उसका तिरस्कार करने लगे।

श्लोक – 9 से 11

न गणस्याग्रतो गच्छेत्सिध्दे कार्ये समं फलम्।यदि कार्यविपत्तिः स्यान्मुखरस्तत्र हन्यते।।

समूह के आगे मुखिया होकर न जाना चाहिये। क्योंकि यदि काम सिद्ध हो गया तो फल सबों को बराबर प्राप्त होगा, और अगर काम बिगड़ गया तो मुखिया ही मारा जाएगा। सबको उसकी निंदा करते

देख चित्रग्रीव बोला– “” इसका कुछ दोष नहीं है।” हितकारक पदार्थ भी आने वाली आपत्तियों का कारण हो जाती है, जैसे गोदोहन के समय माता की जाँघ ही बछड़े के बाँधने का खूँटा हो जाती है।

स बंधुर्यो विपन्नानामापदुद्धरणक्षमः। न तु भीतपरित्राणवस्तूपालम्भपण्डितः।।

बंधु वह है, जो आपत्ति में पड़े हुए मनुष्यों को निकालने में समर्थ हो और जो दुखियों की रक्षा करने के उपाय बताने की बजाय उलाहना देने में चतुराई समझे, वह बंधु नहीं है।

आपत्ति से घबरा जाना तो कायर पुरुष का चिन्ह है, इसलिये इस काम में धीरज धर कर उपाय सोचना चाहिए।

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा,

सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।

यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ,

प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्।

आपदा में धीरज, बढ़ती में क्षमा, सभा में वाणी की चतुरता, युद्ध में पराक्रम, यश में रुचि और शास्त्र में अनुराग ये बातें महात्माओं में स्वाभाव से ही होती है।

जाल ले कर उड़ चलो-

जिसे संपत्ति में हर्ष और आपत्ति में खेद न हो और संग्राम में धीरता हो, ऐसा तीनों लोक में तिलक का जन्म विरला होता है और उसको विरली माता ही जनती है। इस संसार में अपना कल्याण चाहने वाले पुरुष को निद्रा, तंद्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता ये छः अवगुण छोड़ देने चाहिए। अब भी ऐसा करो, सब एक मत होकर जाल को ले उड़ो।

श्लोक – 12

अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका। तृणैर्गुणत्वमापन्नैर्बध्यन्ते मत्तदन्तिनः।।

छोटी- छोटी वस्तुओं के समूह से भी कार्य सिद्ध हो जाता है, जैसे घास की बटी हुई रस्सियों से मतवाला हाथी भी बाँधे जाते हैं।

जाल ले कर उड़ना-

अपने कुल के थोड़े मनुष्यों का समूह भी कल्याण का करने वाला होता है, क्योंकि तुस (छिलके) से अलग हुए चावल फिर नहीं उगते हैं।

यह सोच कर सब कबूतर जाल को लेकर उड़े और वह बहेलिया जाल को लेकर उड़ने वाले कबूतरों को दूर से देख कर पीछे दौड़ता हुआ सोचने लगा, ये पक्षी मिल कर मेरे जाल को लेकर उड़ रहे हैं, परंतु जब ये गिरेंगे तब मेरे वश में हो जायेंगे। फिर जब वे पक्षी आँखों से ओझल हो गये तब व्याध लौट गया। जब कबूतर ने देखा कि लोभी व्याध लौट रहा है तब कबूतर ने कहा कि अब क्या करना चाहिए।

श्लोक – 13

माता मित्रं पिता चेति स्वभावात्रितयं हितम्। कार्यकारणतश्चान्ये भवन्ति हितबुद्धयः।।

माता, पिता और मित्र ये तीनों स्वभाव से हितकारी होते हैं और दूसरे लोग कार्य और किसी कारण से हित की इच्छा करने वाले होता हैं।

चूहों के राजा हिरण्यक के पास जाना-

इसलिए मेरा मित्र हिरण्यक नामक चूहों का राजा गंडकी नदी के तीर पर चित्रवन में रहता है, वह हमारे फंदों को काटेगा। यह विचार कर सह हिरण्यक के बिल के पास गये। हिरण्यक सदा आपत्ति आने की आशंका से अपना बिल सौ द्वार का बना कर रहता था। फिर हिरण्यक कबूतरों के उतरने की आहट से डर कर चुपके से बैठ गया। चित्रग्रीव बोला– हे मित्र हिरण्यक, हमसे क्यों नहीं बोलते हो ? फिर हिरण्यक उसकी बोली पहचान कर शीघ्रता से बाहर निकल कर बोला — अहा ! मैं पुण्यवान हूँ कि मेरा प्यारा मित्र चित्रग्रीव आया है।

श्लोक – 14

यस्य मित्रेण संभाषो यस्य मित्रेण संस्थिति:। यस्य मित्रेण संलापस्ततो नास्तीह पुण्यवान।।

जिसकी मित्र के साथ बोल- चाल है, जिसका मित्र के साथ रहना- सहना हो, और जिसकी मित्र के साथ गुप्त बात- चीत हो, उसके समान कोई इस संसार में पुण्यवान नहीं है।

मित्र का हाल-

अपने मित्र को जाल में फँसा देखकर आश्चर्य से क्षण भर ठहर कर बोला"– मित्र, यह क्या है ? चित्रग्रीव बोला"– मित्र, यह हमारे पूर्वजन्म के कर्मों का फल है।

श्लोक – 15 और 16

यस्माच्च येन च यथा च यदा च यच्च,

यावच्च यत्र च शुभाशुभमात्मकर्म।

तस्माच्च तेन च तथा च तदा च तच्च,

तावच्च तत्र च विधातृवशादुपैति।

जिस कारण से, जिसके करने से, जिस प्रकार से, जिस समय में, जिस काल तक और जिस स्थान में जो कुछ भला और बुरा अपना कर्म है, उसी कारण से , उसी के द्वारा, उसी प्रकार से, उसी समय में, वही कर्म, उसी काल तक, उसी स्थान में, प्रारब्ध के वश से पाता है।

रोगशोकपरीतापबन्धनव्यसनानि च।आत्मापराधवृक्षाणां फलान्येतानि दहिनाम्।

रोग, शोक, पछतावा, बंधन और आपत्ति ये देहधारियों (प्राणियों) के लिए अपने अपराधरुपी वृक्ष के फल हैं।

बंधन का काटना-

यह सुनकर हिरण्यक चित्रग्रीव के बंधन काटने के लिए शीघ्र पास आया। चित्रग्रीव बोला– मित्र, ऐसा मत करो, पहले मेरे उन आश्रितों के बंधन काटो, मेरा बंधन बाद में काटना। हिरण्यक ने भी कहा — मित्र, मैं निर्बल हूँ और मेरे दाँत भी कोमल हैं, इसलिए इन सबका बंधन काटने के लिए कैसे समर्थ हूँ ? इसलिए जब तक मेरे दाँत नहीं टूटेंगे, तब तक तुम्हारा फंदा काटता हूँ। बाद में इनके भी बंधन जहाँ तक कट सकेंगे तब तक काटूँगा। चित्रग्रीव बोला– यह ठीक है, तो भी यथाशक्ति पहले इनके काटो। हिरण्यक ने कहा– अपने को छोड़कर अपने आश्रितों की रक्षा करना यह नीति जानने वालों को संमत नहीं है।

क्योंकि मनुष्य को आपत्ति के लिए धन की, धन देकर स्त्री की और धन और स्त्री देकर अपनी रक्षा सर्वदा करनी चाहिए।

श्लोक – 17

धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राणा: संस्थितिहेतवः। तान्निघ्रता किं न हतं, रक्षता किं न रक्षितम् ?

दूसरे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों की रक्षा के लिए प्राण कारण हैं, इसलिए जिसने इन प्राणों का घात किया, उसने क्या घात नहीं किया ? अर्थात सब कुछ घात किया और जिसने प्राणों का रक्षण किया उसने क्या रक्षण न किया ? अर्थात सबका रक्षण किया।

चित्रग्रीव का जबाब-

चित्रग्रीव बोला– मित्र, नीति तो ऐसी ही है, परंतु मैं अपने आश्रितोंका दुख सहने को सब प्रकार से असमर्थ हूँ।

श्लोक – 18

धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्। सन्निमित्ते वरं त्यागो विनाशे नियते सति।।

चित्रग्रीव कहता है कि पण्डित को पराये उपकार के लिए अपना धन और प्राणों को भी छोड़ देना चाहिए, क्योंकि विनाश तो अवश्य होगा, इसलिये अच्छे पुरुषों के लिए प्राण त्यागना अच्छा है।

चित्रग्रीव की बातें-

दूसरा यह भी एक विशेष कारण है कि इन कबूतरों का और मेरा जाति, द्रव्य और बल समान है, तो मेरी प्रभुता का फल कहो, जो अब न होगा तो किस काल में और क्या होगा ? आजीविका के बिना भी ये मेरा साथ नहीं छोड़ते हैं, इसलिए प्राणों के बदले भी इन मेरे आश्रितों को जीवनदान दो। हे मित्र, मांस, मल, मूत्र तथ हड्डी से बने हुए इस विनाशी शरीर में आस्था को छोड़ कर मेरे यश को बढ़ाओ। जो अनित्य और मल- मूत्र से भरे हुए शरीर से निर्मल और नित्य यश मिले तो क्या नहीं मिला ? अर्थात सब कुछ मिला।

श्लोक – 19

शरीरस्य गुणानां च दूरमत्यन्तमन्तरम। शरीरं क्षणविध्वंसि कल्पान्तस्थायिनों गुणा:।।

शरीर और दयादि गुणों में बड़ा अंतर है। शरीर तो क्षणभंगुर है और गुण कल्प के अंत तक रहने वाले हैं।

सबका बंधन कटना-

यह सुनकर हिरण्यक प्रसन्नचित्त तथा पुलकित होकर बोला– धन्य है, मित्र, धन्य है। इन आश्रितों पर दया विचारने से तो तुम तीनों लोक की ही प्रभुता के योग्य हो। ऐसा कह कर उसने सबका बंधन काट डाला। बाद में हिरण्यक सबका आदर- सत्कार कर बोला — मित्र चित्रग्रीव, इस जाल बंधन के विषय में दोष की शंका कर अपनी अवज्ञा नहीं करनी चाहिए।

श्लोक – 20

योऽधिकाद्योजनशतात्पश्यतीहामिषं खगः। स एव प्राप्तकालस्तु पाशबंध न पश्यति।।

जो पक्षी सैकड़ों योजना से भी अधिक दूर से अन्न के दाने को या माँस को देखता है, वही बुरा समय आने पर जाल की बड़ी गाँठ नहीं देखता है।

काल बलवान है-

चंद्रमा तथा सूर्य को ग्रहण की पीड़ा, हाथी और सपं का बंधन और पण्डित की दरिद्रता, देख कर मेरी तो समझ में यह आता है कि प्रारब्ध ही बलवान है। और आकाश के एकांत स्थान में विहार करने वाले पक्षी भी विपत्ति में पड़ जाते हैं। और चतुर धीवर मछलियों को अथाह समुद्र में भी पकड़ लेते हैं। इस संसार में दुर्नीति क्या है और सुनीति क्या है और विपत्तिरहित स्थान के लाभ में क्या गण है ? अर्थात कुछ नहीं है। क्योंकि काल आपत्तिरुप अपने हाथ फैला कर बैठा है और कुछ समय आने पर दूर ही से ग्रहण कर झपट लेता है।

लघुपतनक का मित्रता प्रस्ताव -

यों समझा कर और अतिथि सत्कार कर तथा मिल भेटकर उसने चित्रग्रीव को विदा किया और वह अपने परिवारसमेत अपने देश को गया। हिरण्यक भी अपने बिल में घुस गया।

इसके बाद लघुपतनक नामक कौवा सब वृत्तांत को जानने वाला आश्चर्य से यह बोला– हे हिरण्यक, तुम प्रशंसा के योग्य हो, इसलिए कृपा करके मुझसे भी मित्रता कर लो। यह सुन कर हिरण्यक भी बिल के भीतर से बोला– तू कौन है ? वह बोला– मैं लघुपतनक नामक कौवा हूँ। हिरण्यक हँस कर कहने लगा– तेरे संग कैसी मित्रता ?

कौवे का उत्तर-

क्योंकि पंडित को चाहिए कि जो वस्तु संसार में जिस वस्तु के योग्य हो उसका उससे मेल आपस में कर दें, मैं तो अन्न हूँ और तुम खाने वाले हो। इस लिए भक्ष्य और भक्षक की प्रीति कैसी होगी ?

कौवा बोला– तुझे खा लेने से भी तो मेरा बहुत आहार नहीं होगा, मैं निष्कपट चित्रग्रीव के समान तेरे जीने से जीता रहूँगा।

पुण्यात्मा मृग- पक्षियों का भी विश्वास देखा जाता है, क्योंकि पुण्य ही करने वाले सज्जनों का स्वभाव सज्जनता के कारण कभी नहीं पलटता है।

श्लोक – 21

साधोः प्रकोपितस्यापि मनो नायाति विक्रियाम। न हि तापयिंतु शक्यं सागराम्भस्तृणोल्कया।।

चाहे जैसे क्रोध में क्यों न हो सज्जन का स्वभाव कभी डामाडोल न होगा, जैसे जलते हुए तनकों की आँच से समुद्र का जल कौन गरम कर सकता है ?

हिरण्यक ने कहा — तू चंचल है, ऐसे चंचल के साथ स्नेह कभी नहीं करना चाहिए। दूसरा तुम मेरे वैरियों के पक्ष के हो।

श्लोक – 22 और 23

शत्रुणा न हि संदध्यात सुश्लिष्टेनापि संधिना। सुतप्तमपि पानीयं शमयत्येव पावकम्।।

और यह कहा है कि वैरी चाहे जितना मीठा बन कर मेल करे, परंतु उसके साथ मेल न करना चाहिये, क्योंकि पानी चाहे जितना भी गरम हो आग को बुझा ही देता है।

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययालंकृतोऽपि सन्। मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकर।।

दुर्जन विद्यावान भी हो, परंतु उसे छोड़ देना चाहिये, क्योंकि रत्न से शोभायमान सपं क्या भयंकर नहीं होता है

लघुपतनक का संकल्प-

जो बात नही हो सकती, वह कदापि नहीं हो सकती है और जो हो सकती है, वह हो ही सकती है, जैसे पानी पर गाड़ी नहीं चलती और जमीन पर नाव नहीं चल सकती है। लघुपतनक कौवा बोला– मैंने सब सुन लिया, तो भी मेरा इतना संकल्प है कि तेरे संग मित्रता अवश्य करनी चाहिए। नहीं तो भूखा मर अपघात करूँगा।

मित्रता-

दुर्जनों के मन में कुछ, वचन में और काम में कुछ, और सज्जनों के जी में, बचन में और काम में एक बात होती है।इसलिये तेरा भी मनोरथ हो। यह कह कर हिरण्यक मित्रता करके विविध प्रकार के भोजन से कौवे को संतुष्ट करके बिल में घुस गया और कौवा भी अपने स्थान को चला गया। उस दिन से उन दोनों का आपस में भोजन के देने- लेने से, कुशल पूछने से और विश्वासयुक्त बातचीत से समय कटने लगा।

भोजन की कमी-

एक दिन लघुपतनक ने हिरण्यक से कहा — मित्र, इस स्थान में बड़ी मुश्किल से भोजन मिलता है, इसलिए इस स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान में जाना चाहता हूँ। हिरण्यक ने कहा — मित्र, कहाँ जाओगे ?

बुद्धिमान एक पैर से चलता है और दूसरे से ठहरता है। इसलिए दूसरा स्थान निश्चत किये बिना पहला स्थान नहीं छोड़ना चाहिये। कौवा बोला — एक अच्छी भांति देखा भाला स्थान है। हिरण्यक बोला– कौन सा है ? कौआ बोला — दण्डकवन में कर्पूरगौर नाम का एक सरोवर है, उसमें मन्थरनामक एक धर्मशील कछुआ मेरा बहुत पुराना और प्यारा मित्र रहता है। वह विविध प्रकार के भोजन से मेरा सत्कार करेगा। हिरण्यक भी बोला– तो मैं यहाँ रह कर क्या करूँगा

श्लोक – 24

यस्मिन्देशे न संमानो न वृत्तिर्न च बांधवः। न च विद्यागमः कश्चित्तं देशं परिवर्जयेत्।।

क्योंकि जिस देश में न सन्मान, न जीविका का साधन, न भाई या संबंधी और कुछ विद्या का भी लाभ न हो, उस देश को छोड़ देना चाहिये। अर्थात दूसरे शब्दों में जीविका, अभय, लज्जा, सज्जनता और उदारता ये पाँचों बातें जहाँ न हो, वहाँ नहीं रहना चाहिये। साथ ही, जहाँ ऋण देने वाला, वैद्य, वेदपाठी और सुंदर जल से भरी नदी, ये चारों न हो, वहाँ नहीं रहना चाहिए।

सरोवर के पास जाना-

इसलिये मुझे भी वहाँ ले चलो। बाद में कौवा उस मित्र के साथ अच्छी अच्छी बातें करता हुआ बेखटके उस सरोवर के पास पहुँचा। फिर मन्थर ने उसे दूर से देखते ही लघुपतनक का यथोचित अतिथिसत्कार करके चूहे का भी अतिथिसत्कार किया। क्योंकि बालक, बूढ़ा और युवा इनमें से घर पर कोई आया हो, उसका आदर सत्कार करना चाहिये, क्योंकि अभ्यागत सब वर्णो का पूज्य है। ब्राह्मणों को अग्नि, चारों वणा को ब्राह्मण, स्त्रियों को पति और सबको अभ्यागत सर्वदा पूजनीय है।

हिरण्यक का सत्कार-

कौवा बोला– मित्र मन्थर, इसका अधिक सत्कार करो, क्योंकि यह पुण्यात्माओं का मुखिया और करुणा का समुद्र हिरण्यक नामक चूहों का राजा है। इसके गुणों की बड़ाई दो सहस्त्र जीभों से शेष नाग भी कभी

नहीं कर सकता है। यह कह कर चित्रग्रीव का वृत्तांत कह सुनाया। मन्थर बड़े आदर से हिरण्यक का सत्कार करके पूछने लगा– हे मित्र, यह निर्जन वन में अपने आने का भेद तो कहो।

अपना भेद कहना-

विपत्तियों के आ जाने पर निर्णय करके काम करना ही चतुराई है, क्योंकि बिना विचारे काम करने वालों को पद में विपत्तियाँ हैं। कुल की मर्यादा के लिए एक हो, गाँवभर के लिए कुल को, देश के लिए गाँव को और अपने लिये पृथ्वी को छोड़ देना चाहिये। अनायास मिला हुआ जल और भय से मिला मीठा भोजन उन दोनों में विचार कर देखता हूँ, तो जिसमें चित्त बेखटक रहे उसी में सुख है या पराधीन भोजने से सवाधीन जल का मिलना उत्तम है। यह विचार कर मैं निर्जन वन में आया हूँ।

श्लोक – 25

वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं

द्रुमालयं पक्वफलाम्बुभोजनम्।

तृणानि शय्या परिधानवल्कलं,

न बंधुमध्ये धनहीनजीवनम्।।

सिंह और हाथियों से भरे हुए वन के नीचे रहना, पके हुए कंद मूल फल खाकर जल पान करना तथा घास के बिछौने पर सोना और छाल के वस्त्र पहनना अच्छा है, पर भाई बंधुओं के बीच धनहीन जीना अच्छा नहीं है। फिर मेरे पुण्य से उदय से इस मित्र ने परम स्नेह से मेरा आदर किया और अब पुण्य की रीति से तुम्हारा आश्रय मुझे स्वर्ग के समान मिल गया।

मंथन का कहना

मंथन बोला– धन तो चरणों की धूलि के समान है, यौवन पहाड़ की नदी के वेग के समान है, आयु चंचल जल की बिंदु के समान चपल है और जीवन फेन के समान है, इसलिए जो निर्बुद्धि स्वर्ग की आगल को खोलने वाले धर्म को नहीं करता है, वह पीछे बुढ़ापे में पछता कर शोक की अग्नि में जलाया जाता है।

श्लोक – 26 और 27

उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम्। तडागोदरसंस्थानां परीवाह इवाम्भसाम्।।

गंभीर सरोवर में भरे हुए जल के चारों ओर निकलने के (बार- बार जल निकाल देना जैसा सरोवर की शुद्धि का कारण है, उसी के) समान कमाये हुए धन का सत्पात्र में दान करना ही रक्षा है। लोभी जिस

धन को धरती में अधिक नीचे गाड़ता है, वह धन पाताल में जाने के लिए पहले से ही मार्ग कर लेता है। और जो मनुष्य अपने सुख को रोक कर धनसंचय करने की इच्छा करता है, वह दूसरों के लिए बोझ ढोने वाले मजदूर के समान क्लेश ही भोगने वाला है।

दानोपभोगहीनेन धनेन धनिनो यदि। भवामः किं न तेनैव धनेन धनिनो वयम्।

दान और उपभोगहीन धन से जो धनी होते हैं, तो क्या उसी धन से हम धनी नहीं हैं ? अर्थात अवश्य है।

श्लोक – 28, 29 और 30

न देवाय न विप्राय न बंधुभ्यो न चात्मने। कृपणस्य धनं याति वह्नितस्करपार्थिवैः।।

जो मनुष्य धन को देवता के, ब्राह्मण के तथा भाई बंधु के काम में नहीं लाता है, उसे कृपण का धन तो जल जाता है या चोर चुरा ले जाते हैं अथवा राजा छीन लेता है।

दानं प्रियवाकसहितं ज्ञानमगर्वं क्षमान्वितं शौर्यम। वित्तं त्यागनियुक्तं दुर्लभमेतंचतुष्टयं लोके।।

प्रिय वाणी के सहित दान, अहंकाररहित ज्ञान, क्षमायुक्त शूरता, और दानयुक्त धन, ये चार बातें दुनिया में दुर्लभ हैं। और संचय नित्य करना चाहिये, पर अति संचय करना योग्य नहीं है।

आमरणान्ता: प्रणया: कोपास्तत्क्षणभङ्गुरा:। परित्यागाश्च नि:सङ्गा भवन्ति हि महात्मनाम्।।

महात्माओं का स्नेह मरने तक, क्रोध केवल क्षणमात्र और परित्याग केवल संगरहित होता है अर्थात वे कुछ बुराई नहीं करते हैं।

श्लोक – 31

यह सुनकर लघुपतनक बोला– हे मन्थर, तुम धन्य हो, और तुम प्रशंसनीय गुणवाले हो।

सन्त एव सतां नित्यमापदुद्धरणक्षमा:। गजानां पङ्कमग्नानां गजा एव धुरंधरा:।।

सज्जन ही सज्जनों की आपत्ति को सर्वदा दूर करने के योग्य होते हैं। जैसे कीचड़ में फँसे हाथियों के निकालने के लिए हाथी ही समर्थ होते हैं। तब वे इस प्रकार अपनी इच्छानुसार खाते – पीते, खेलते – कूदते संतोष कर सुख से रहने लगे।

चित्रांग मृग-

एक दिन चित्रांग नामक मृग किसी के डर के मारे उनसे आ कर मिला, इसके पीछे मृग को आता हुआ देख भय को समझ मन्थर तो पानी मे घुस गया, चूहा बिल में चला गया और काक भी उड़ कर पेड़ पर

बैठ गया। फिर लघुपतनक ने दूसरे से निर्णय किया कि, भय का कोई भी कारण नहीं है, यह सोचकर बाद में सब मिल कर वहाँ ही बैठ गये। मन्थरने कहा — कुशल हो ? हे मृग, तुम्हारा आना अच्छा हुआ। अपनी इच्छानुसार जल आहार आदि भोग करो अर्थात खाओ, पीयो,और यहाँ रह कर इस वन को सनाथ करो। चित्रांग बोला — व्याध के डर से मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ और तुम्हारे साथ मित्रता करनी चाहता हूँ। हिरण्य बोला– मित्रता तो हमारे साथ तुम्हारी अनायास हो गई है।

मित्र के प्रकार-

क्योंकि मित्र चार प्रकार के होते हैं, एक तो वो जिनका जन्म से ही जैसे पुत्रादि, दूसरे विवाहादि संबंध से हो गये हो, तीसरे कुल परंपरा से आए हुए हों तथा चौथे वे जो आपत्तियों से बचावें। इसलिए यहाँ तुम अपने घर से भी अधिक आनंद से रहो। यह सुन कर मृग प्रसन्न हो अपनी इच्छानुसार भोजन करके तथा जल पी कर जल के पास वृक्ष की छाया में बैठ गया।

डर का कारण-

मन्थर ने कहा कि — हे मित्र मृग, इस निर्जन वन में तुम्हें किसने डराया है क्या कभी कभी व्याध आ जाते हैं मृग ने कहा — कलिंग देश में रुक्मांगद नामक राजा है और वह दिग्विजिय करने के लिये आ कर चंद्रभागा नदी के तीर पर अपनी सेना को टिका कर ठहरा है। और प्रातःकाल वह यहाँ आ कर कर्पूर सरोवर के पास ठहरेगा, यह उड़ती हुई बात शिकारियों के मुख से सुनी जाती है।

प्रातःकाल का भय-

इसलिये प्रातःकाल यहाँ रहना भी भय का कारण है। यह सोच कर समय के अनुसार काम करना चाहिये। यह सुन कर कछुआ डर कर बोला — मैं तो दूसरे सरोवर को जाता हूँ। काग और मृग ने भी कहा — ऐसा ही हो अर्थात चलो। फिर हिरण्यक हँस कर बोला– दूसरे सरोवर तक पहुँचने पर मंथर जीता बचेगा। परंतु इसके पटपड में चलने का कौन सा उपाय है।

श्लोक – 32

अम्भांसि जलजन्तुनां दुर्गे दुर्गनिवासिनाम्। स्वभूमि: श्वापदादीनां राज्ञां मंत्री परं बलम्।।

जल के जंतुओं को जल का, गढ़ में रहने वालों को गढ़ का, सिंहादि वनचरों को अपनी भूमि का और राजाओं को अपने मंत्री का परम बल होता है।

हितकारक

उसके हितकारक वचनों को न मान कर बड़े भय से मूर्ख की भांति वह मन्थर उस सरोवर को छोड़ कर चला। वे हिरण्यक आदि भी स्नेह से विपत्ति की शंका करते हुए मन्थर के पीछे- पीछे चले। फिर पटपड़ में जाते हुए मन्थर को, वन में घूमते हुए किसी व्याध ने पाया। वह उसे पा कर धनुष मे बांध घुमता हुआ क्लेस से उत्पन्न हुई क्षुधा ओर प्यास से व्याकुल, अपने घर की ओर चला। पीछे मृग, काग और चूहा वे बड़ा विषाद करते हुए उसके पीछे- पीछे चले। हिरण्यक विलाप करने लगा — समुद्र के पार के समान नि:सीमा एक दुख के पार जब तक मैं नहीं जाता हूँ, तब तक मेरे लिए दूसरा दुख आ कर उपस्थित हो जाता है, क्योंकि अनर्थ के साथ बहुत से अनर्थ आ पड़ते हैं।

स्वभाव से स्नेह करने वाला मित्र तो प्रारब्ध से ही मिलता है कि जो सच्ची मित्रता को आपत्तियों में भी नहीं छोड़ता है।

श्लोक – 33

न मातरि न दारेषु न सोदर्ये न चात्मजे। विश्वासस्तादृशः पुंसां यादृङ्मित्रे स्वभावजे।।

न माता, न स्त्री में, न सगे भाई में , न पुत्र में ऐसा विश्वास होता है कि जैसा स्वाभाविक मित्र में होता है। इस संसार में अपने पाप- पुण्यों से किये गये और समय के उलट- पलट से बदलने वाले सुख- दुख , पुर्वजन्म के किये हुए पाप- पुण्यों के फल मैंने यहाँ ही देख लिये।

श्लोक – 34

कायः संनिहितापायः संपदः पदमापदाम्। समागमाः सापगमाः सर्वमुत्पादि भङ्गरम्।।

अथवा यह ऐसे ही है — शरीर के पास ही उसका नाथ है और संपत्तियाँ आपत्तियों का मुख्य स्थान है और संयोग के साथ वियोग है, अर्थात अस्थिर है और उत्पन्न हुआ सब सब नाश होने वाला है।

मित्र की उत्पति

और विचार कर बोला — शोक और शत्रु के भय से बचाने वाला तथा प्रीति और विश्वास का पात्र, यह दो अक्षर का मित्र रुपी रत्न किसने रचा है ? और अंजन के समान नेत्रों को प्रसन्न करने वाला, चित्त को आनंद देने वाला और मित्र के साथ सुख दुख में साथ देने वाला, अर्थात दुख में दुखी, सुख में सुखी हो ऐसा मित्र होना दुर्लभ है और संपत्ति के समय में धन हरने वाले मित्र हर जगह मिलते हैं। परंतु विपत्काल ही उनके परखने की कसौटी है।

इस प्रकार बहुत- सा विलास करके हिरण्यने चित्रांग और लघुपतनक से कहा — जब तक यह व्याध वन से न निकल जाए, तब तक मन्थर को छुड़ाने का यत्न करो। वे दोनों बोले– शीघ्र कार्य को कहिये।

मन्थर को बचाने की योजना-

हिरण्यक बोला– चित्रांग जल के पास जा कर मरे के समान अपना शरीर दिखावे और काक उस पर बैठ के चोंच से कुछ- कुछ खोदे। यह व्याध कछुए को अवश्य वहाँ छोड़ कर मृगमाँस के लोभ से शीघ्र जाएगा। फिर मैं मन्थर के बंधन काट डालूँगा। और जब व्याध तुम्हारे पास आवे तब भाग जाना। तब चित्रांग और लघुपतनक ने शीघ्र जा कर वैसा ही किया तो वह व्याध पानी पी कर एक पेड़ के नीचे बैठा मृग को उस प्रकार देख पाया। फिर छुरी लेकर आनंदित होता हुआ मृग के पास जाने लगा।

मन्थर का बचना-

इतने ही में हिरण्यक ने आ कर कछुए को बंधन काट डाला। तब वह कछुआ शीघ्र सरोवर में घुस गया। वह मृग उस व्याध को पास आता हुआ देख उठ कर भाग गया। जब व्याध लौट कर पेड़ के नीचे आया, तब कछुए को न देखकर सोचने लगा– मेरे समान बिना विचार करने वाले के लिए यही उचित था।

श्लोक – 35

यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणि निषेवते। ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव हि।।

जो निश्चित को छोड़ कर अनिश्चित पदार्थ का आसरा करता है, उसके निश्चित पदार्थ नष्ट हो जाते हैं और अनिश्चित भी जाता रहता है।

फिर वह अपने प्रारब्ध को दोष लगाता हुआ निराश होकर अपने घर गया। मन्थर आदि भी सब आपत्ति से निकल अपने- अपने स्थान पर जा कर सुख से रहने लगे।

इकाई ८

प्रवचनों में सहायक प्रसिद्ध वैदिकसूक्त एवं लौकिकश्लोक संग्रह

गणपति अथर्वशीर्षम्

ॐ श्री गणेशाय नमः

ॐ नमस्ते गणपतये। त्वमेव प्रत्यक्षम तत्त्वमसि ।

त्वमेव केवलङ् कर्ताऽसि। त्वमेव केवलम धर्ताऽसि ।

त्वमेव केवलम् हर्ताऽसि। त्वमेव सर्वङ् खल्विदम् ब्रह्मासि ।

त्वं साक्षादात्माऽसि नित्यम् ।।

अर्थात:- हे ! गणेशा तुम्हे प्रणाम, तुम ही सजीव प्रत्यक्ष रूप हो, तुम ही कर्म और कर्ता भी तुम ही हो, तुम ही धारण करने वाले, और तुम ही हरण करने वाले संहारी हो | तुम में ही समस्त ब्रह्माण व्याप्त हैं तुम्ही एक पवित्र साक्षी हो |

ऋतं वच्मि । सत्यं वच्मि ।।

अर्थात :- ज्ञान कहता हूँ सचाई कहता हूँ |

अव त्वम् माम् । अव वक्तारम् ।

अव श्रोतारम् । अव दातारम् ।

अव धातारम् । अवानूचानमव शिष्यम् ।

अव पश्चात्तात् । अव पुरस्तात् ।

अवोत्तरात्तात् । अव दक्षिणात्तात् ।

अव चोर्ध्वात्तात् । अवाधरात्तात् ।

सर्वतो माम् पाहि पाहि समन्तात् ।।

अर्थात :- तुम मेरे हो मेरी रक्षा करों, मेरी वाणी की रक्षा करो। मुझे सुनने वालो की रक्षा करों | मुझे देने वाले की रक्षा करों मुझे धारण करने वाले की रक्षा करों | वेदों उपनिषदों एवम उसके वाचक की रक्षा करों साथ उससे ज्ञान लेने वाले शिष्यों की रक्षा करों | चारो दिशाओं पूर्व, पश्चिम, उत्तर, एवम दक्षिण से सम्पूर्ण रक्षा करों |

त्वं वाङ्मयस्त्वञ् चिन्मयः ।

त्वम् आनन्दमयस्त्वम् ब्रह्ममयः ।

त्वं सच्चिदानन्दाद्वितीयोऽसि ।

त्वम् प्रत्यक्षम् ब्रह्मासि ।

त्वम् ज्ञानमयो विज्ञानमयोऽसि ।।

अर्थात:- तुम वाम हो, तुम ही चिन्मय हो, तुम ही आनन्द ब्रह्म ज्ञानी हो, तुम ही सच्चिदानंद, अद्वितीय रूप हो , प्रत्यक्ष कर्ता हो तुम ही ब्रह्म हो, तुम ही ज्ञान विज्ञान के दाता हो ।

सर्वञ् जगदिदन् त्वत्तो जायते ।

सर्वञ् जगदिदन् त्वत्तस्तिष्ठति ।

सर्वञ् जगदिदन् त्वयि लयमेष्यति ।

सर्वञ् जगदिदन् त्वयि प्रत्येति ।

त्वम् भूमिरापोऽनलोऽनिलो नभः ।

त्वञ् चत्वारि वाक्पदानि ।।

अर्थात :- इस जगत के जन्म दाता तुम ही हो,तुमने ही सम्पूर्ण विश्व को सुरक्षा प्रदान की हैं सम्पूर्ण संसार तुम में ही निहित हैं पूरा विश्व तुम में ही दिखाई देता हैं तुम ही जल, भूमि, आकाश और वायु हो । तुम चारों दिशा में व्याप्त हो ।

त्वङ् गुणत्रयातीतः। त्वम् अवस्थात्रयातीतः ।

त्वन् देहत्रयातीतः । त्वङ् कालत्रयातीतः ।

त्वम् मूलाधारस्थितोऽसि नित्यम् ।

त्वं शक्तित्रयात्मकः । त्वां योगिनो ध्यायन्ति नित्यम् ।

त्वम् ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वम् रुद्रस्त्वम् इन्द्रस्त्वम् ।

अग्निस्त्वं वायुस्त्वं सूर्यस्त्वञ चन्द्रमास्त्वम्,

ब्रह्मभूर्भुवः स्वरोम्।।

अर्थात :- तुम सत्व,रज,तम तीनो गुणों से भिन्न हो । तुम तीनो कालो भूत, भविष्य और वर्तमान से भिन्न हो । तुम तीनो देहो से भिन्न हो ।तुम जीवन के मूल आधार में विराजमान हो । तुम में ही तीनो शक्तियां

धर्म, उत्साह, मानसिक व्याप्त हैं ।योगि एवम महा गुरु तुम्हारा ही ध्यान करते हैं । तुम ही ब्रह्म, विष्णु, रूद्र, इंद्र, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र हो । तुम मे ही गुणों सगुण, निर्गुण का समावेश हैं ।

गणादिम् पूर्वमुच्चार्य, वर्णादिन् तदनन्तरम् ।

अनुस्वारः परतरः । अर्धेन्दुलसितम् ।

तारेण ऋद्धम् । एतत्तव मनुस्वरूपम् ।

गकारः पूर्वरूपम् । अकारो मध्यमरूपम् ।

अनुस्वारश्चान्त्यरूपम् । बिन्दुरुत्तररूपम् ।

नादः सन्धानम् । संहिता सन्धिः ।

सैषा गणेशविद्या । गणक ऋषिः ।

निचृद्गायत्री छन्दः । गणपतिर्देवता ।

ॐ गँ गणपतये नमः ।।

अर्थात :- "गं" का उच्चारण करके बाद के आदिवर्ण अकार का उच्चारण करें । ॐ कार का उच्चारण करे यह पुरे मन्त्र ॐ गं गणपतये नम: का भक्ति से उच्चारण करें ।

एकदन्ताय विद्महे ।

वक्रतुण्डाय धीमहि ।

तन्नो दन्तिः प्रचोदयात्

अर्थात :- एकदंत, वक्रतुंड का हम ध्यान करते हैं । वह हमें इस सदमार्ग पर चलने की भगवान प्रेरणा दे।

एकदन्तञ् चतुर्हस्तम्, पाशमङ्कुशधारिणम् ।

रदञ् च वरदम् हस्तैर्बिभ्राणम्, मूषकध्वजम् ।

रक्तं लम्बोदरं, शूर्पकर्णकम् रक्तवाससम् ।

रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गम्, रक्तपुष्पैःसुपूजितम् ।

भक्तानुकम्पिनन् देवञ्, जगत्कारणमच्युतम् ।

आविर्भूतञ् च सृष्ट्यादौ, प्रकृतेः पुरुषात्परम् ।

एवन् ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः ।।

अर्थात :- भगवान गणेश एकदन्त चार भुजाओं वाले हैं जिसमे वह पाश,अंकुश, दन्त, वर मुद्रा रखते हैं । उनके ध्वज पर मूषक हैं । यह लाल वस्त्र धारी हैं । चन्दन का लेप लगा हैं । लाल पुष्प धारण करते हैं । सभी की मनोकामना पूरी करने वाले जगत में सभी जगह व्याप्त हैं । श्रृष्टि के रचियता हैं । जो इनका ध्यान सच्चे हृदय से करे वो महा योगि हैं ।

नमो व्रातपतये, नमो गणपतये,

नमः प्रमथपतये, नमस्ते अस्तु लम्बोदराय एकदन्ताय,

विघ्ननाशिने शिवसुताय, वरदमूर्तये नमः ।।

अर्थात :– व्रातपति, गणपति को प्रणाम, प्रथम पति को प्रणाम, एकदंत को प्रणाम, विघ्नविनाशक, लम्बोदर, शिवतनय श्री वरद मूर्ती को प्रणाम ।

एतदथर्वशीर्षं योऽधीते । स ब्रह्मभूयाय कल्पते ।

स सर्वविघ्नैर्न बाध्यते । स सर्वतः सुखमेधते ।

स पञ्चमहापापात् प्रमुच्यते ।

सायमधीयानो दिवसकृतम् पापन् नाशयति ।

प्रातरधीयानो रात्रिकृतम् पापन् नाशयति ।

सायम् प्रातः प्रयुञ्जानोऽअपापो भवति ।

सर्वत्राधीयानोऽपविघ्नो भवति ।

धर्मार्थकाममोक्षञ् च विन्दति ।

इदम् अथर्वशीर्षम् अशिष्याय न देयम् ।

यो यदि मोहाद्दास्यति स पापीयान् भवति ।

सहस्रावर्तनात् यं यङ् काममधीते,

तन् तमनेन साधयेत् ।।

अर्थात :- जो इस अथर्वशीष का पाठ करता हैं वह समस्त विघ्नों से दूर होता हैं । वह सदैव ही सुखी हो जाता हैं वह पंच महा पाप से दूर हो जाता हैं । सन्ध्या में पाठ करने से दिन के दोष दूर होते हैं । प्रातः पाठ करने से रात्रि के दोष दूर होते हैं ।हमेशा नित्य पाठ करने वाला दोष रहित हो जाता हैं और साथ

ही धर्म, अर्थ, काम एवँ मोक्ष पर विजयी को प्राप्त करता हैं। इसका 1 हजार बार पाठ करने से उपासक सिद्धि प्राप्त कर योगी बन जाएगा।

अनेन गणपतिमभिषिञ्चति ।

स वाग्मी भवति ।

चतुर्थ्यमनश्नन् जपति स विद्यावान् भवति ।

इत्यथर्वणवाक्यम् । ब्रह्माद्यावरणम् विद्यात् ।

न बिभेति कदाचनेति ।।

अर्थात :- जो इस मन्त्र के उच्चारण के साथ गणेश जी का अभिषेक करता हैं उसकी वाणी उसकी दास हो जाती हैं। जो चतुर्थी के दिन उपवास कर जप करता हैं, वह विद्वान व्यक्ति बनता हैं। जो ब्रह्मादि आवरण को जानता है वह भय व डर से मुक्त होता हैं।

यो दूर्वाङ्कुरैर्यजति । स वैश्रवणोपमो भवति ।

यो लाजैर्यजति, स यशोवान् भवति ।

स मेधावान् भवति । यो मोदकसहस्रेण यजति ।

स वाञ्छितफलमवाप्नोति ।

यः साज्यसमिद्भिर्यजति स सर्वं लभते, स सर्वं लभते ।।

अर्थात :- जो दुर्वकुरो द्वारा पूजन करता हैं वह कुबेर के समान बनता हैं।जो लाजा के द्वारा पूजन , पाठ करता हैं वह यशस्वी बनता हैं मेधावी बनता हैं जो मोदको के साथ पूजा पाठ करता हैं वह मन: अनुसार फल प्राप्त करता हैं। जो घृतात्क समिधा के द्वारा हवन करता हैं वह सब कुछ प्राप्त करता हैं।

अष्टौ ब्राह्मणान् सम्यग्ग्राहयित्वा,

सूर्यवर्चस्वी भवति ।

सूर्यग्रहे महानद्याम् प्रतिमासन्निधौ

वा जप्त्वा, सिद्धमन्त्रो भवति ।

महाविघ्नात् प्रमुच्यते। महादोषात् प्रमुच्यते।

महापापात् प्रमुच्यते । स सर्वविद् भवति,

स सर्वविद् भवति । य एवम् वेद ।।

अर्थात :- जो आठ ब्राह्मणों को उपनिषद् का ज्ञाता बनाता हैं वे स्वयं सूर्य के सामान तेजस्वी होते हैं। सूर्य ग्रहण के समय नदी के तट पर अथवा अपने इष्ट देव के समीप इस उपनिषद् का पठन करे तो सिद्धी की प्राप्त होती हैं। जिससे जीवन की समस्त रूकावटे दूर होती हैं, पाप कटते हैं वह व्यक्ति विद्वान हो जाता हैं, यह ऐसी ब्रह्म विद्या हैं।

शान्तिमन्त्रः

ॐ भद्रङ् कर्णेभिः श्रृणुयाम देवाः ।

भद्रम् पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिः

व्यशेम देवहितं यदायुः ।।

अर्थात :- हे ! गणपति हमें ऐसे शब्द एवँ विचार हमारे कानो में पड़े जो हमें ज्ञान दे और निन्दा एवम दुराचार से दूरी बनाए रखे ।हम सदैव समाज की सेवा में लगे रहे तथा बुरे कर्मों से दूर रहकर हमेशा भगवान की भक्ति में लीन रहें ।हमारे स्वास्थ्य पर हमेशा आपकी कृपा बनी रहे और हम भोग विलास से दूर रहें। हमारे तन मन धन में ईश्वर का वास हो जो हमें सदैव अच्छे मार्ग पर लेकर चले, सुकर्मो का भागी बनाये। यही प्रार्थना हम आपसे करते हैं।

ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः ।

स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।

स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः

स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।

अर्थात :- चारो दिशाओं में जिसकी कीर्ति व्याप्त हैं वह इंद्र देवता जो कि देवता गण के देव हैं उनके जैसे जिनकी ख्याति, प्रसिद्धि हैं जो बुद्धि का अपार सागर हैं जिनमे बृहस्पति देव के सामान शक्तियाँ हैं जिनके मार्गदर्शन से कर्म को दिशा मिलती हैं जिससे सम्पूर्ण मानव जाति का भला होता हैं।

गणेश अथर्वशीर्ष पाठ के लाभ :-

1. ऐश्वर्यवान, धनवान, बुद्धिमान बनाता है:-

जो व्यक्ति नित्य प्रतिदिन पूरी आस्था एवँ श्रद्धा के साथ Ganpati Atharvashirsha का पाठ करता है , वह व्यक्ति ऐश्वर्यवान ,धनवान एवँ बुद्धिमान बनाता है। वह व्यक्ति दिन प्रतिदिन तरक्की के ओर अग्रसर होता है ,उसके समस्त कार्य स्वतः ही पूर्ण हो जाते हैं।

2. नोकरी एवँ व्यवसाय में सफलता:-

अगर कोई व्यक्ति नित्य श्री गणपति अथर्वशीर्ष का पाठ करता हैं, तो वह व्यक्ति दिन प्रतिदिन नित नई ऊंचाइयों को छूते हुए नोकरी में उच्च पदों को प्राप्त करता है। वह व्यक्ति हमेशा व्यापार में सफलता को प्राप्त करता है। उसके व्यापार में वह अच्छे पदों को प्राप्त करता है।

3. बुध दोष दूर होता है:-

जिस व्यक्ति की कुंडली मे बुध ग्रह कमजोर अथवा अस्त है उस व्यक्ति को श्री गणपति अथर्वशीर्ष का पाठ करना चाहिए जिस से बुध ग्रह मजबूत होता है एवँ व्यक्ति का मनोबल बढ़ता है उसकी बुद्धि का विकास होता है एवँ उसके सभी विघ्न समाप्त होते है।

4. विद्यार्थियों के लिए महामंत्र:-

विधार्थियों को नित्य रूप से श्री Ganpati Atharvashirsha का पाठ करना चाहिए। विधार्थियों के लिए यह एक प्रकार से महामंत्र है । जिन बच्चो का पढ़ाई में मन नही लगता, जिनका मन चंचल है या बहुत मेहनत करने पर भी सफलता नही मिल पाती उन्हें नित्य श्री गणपति अथर्वशीर्ष का पाठ करना चाहिए।

5. घर मे सुख एवँ प्रसन्नता:-

जिस घर मे नित्य श्री गणपति अथर्वशीर्ष का पाठ होता है उस घर में सुख एवँ प्रसन्नता स्वतः ही बनी रहती है । माँ लक्ष्मी एवं विघ्नहर्ता गणेश की उस घर पर कृपा बनी रहती है।

॥ सामवेद पावमानसूक्त ॥

प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष।
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्ही रशनाभिर्नयन्ति॥ ॥१॥५२४.

प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति।
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन्॥ ॥२॥५२५.

तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः॥ ॥३॥५२६.

अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम्।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म पशुमन्ति होता॥ ॥४॥५२७.

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः॥ ॥५॥५२८.

अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामाङ्गोषिणमवावशन्त वाणीः।
वना वसानो वरुणो न सिन्धूर्वि रत्नधा दयते वार्याणि॥ ॥६॥५२९.

अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मं जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः॥ ॥७॥५३०.

कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन्वनस्य जठरे पुनानः।
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गामतो मतिं जनयत स्वधाभिः॥ ॥८॥५३१.

एष स्य ते मधुमाꣳ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णः परि पवित्रे अक्षाः।
सहस्रदाः शतदा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात्॥ ॥९॥५३२.

पवस्व सोम मधुमाꣳ ऋतावापो वसानो अधि सानो अव्ये।
अव द्रोणानि घृतवन्ति रोह मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः॥ ॥१०॥

भावार्थ-

१. [हे सोमः] (तु प्र दव) तुम शीघ्रतापूर्वक जाओ (कोशं परि निसीद्) द्रोण कलश के चारों तरफ बैठो भीतर प्रवेश करके स्थित रहो (नृभिः) मनुष्यों, याजकों के द्वारा (पुनानः) पवित्र शुद्ध किए जाते हुए [यजमान को] (वाजम् अभि अर्ष) अन्नादि धन की ओर बढ़ो प्रदान करो (मर्जयन्तः वाजिनं अश्व) समार्जन शुद्ध करते हुए शक्तिशाली अश्व की (न) तरह (मर्जयन्तः वाजिनं त्वा त्वां) शुद्ध करते हुए ओज-शक्ति प्रदान करने वाले तुमको (रशनाभिः) रश्मियों रस्सियों के द्वारा (बर्हिः अच्छ) यज्ञ की वेदी के पास (नयन्ति) याज्ञिकगण ले जाते हैं।१

२. (काव्यं) काव्य, वेदज्ञान को (प्र ब्रुवाणः) अच्छी प्रकार से वर्णन करते हुए (उशना इव) मेधावी उशना कवि की तरह (देवः) देव सोम (देवानां) अग्नि-इन्द्र-वरुण इत्यादि वेदों के (जनिमा जनिमानि जन्मानि) जन्मों को (आ विवक्ति) अच्छी तरह से कहता है, वर्णन करता है। (महिव्रतः) महान् कर्मवाला (शुचि-बन्धुः) पवित्र प्रकाशवाला, शुद्ध तेज से सभी को बाँधने वाला (वर-अहः) यज्ञ के श्रेष्ठ उत्तम दिन का स्वामी [सोम] (रेभन्) शब्द करता हुआ, गर्जन करता हुआ (पदाः) उत्तम स्थान पर (अभि एति) आता है।२

३. (वह्निः) यजमान (ऋतस्य धीतिम्) सत्य यज्ञ को धारण करने वाली (ब्रह्मणः मनीषां) महान् सोम को चाहने वाली (तिस्रः वाचः) ऋक् यजुस् साम रूपी तीन वाणियों स्तुतियों को (प्र ईरयति) प्रेरित करता है। (गोपतिं पृच्छमानाः गावः) गो-पति वृषभ को पूछती खोजती हुई गायों की भाँति (वावशानाः) प्राप्त करने की इच्छा करती हुई (मतयः) मेरी बुद्धियाँ प्रार्थनाएँ (सोमं यन्ति) सोमदेव के पास जाती हैं।३

४. (अस्य) इस सोमदेव के (प्रेषा) प्रेरक (हेमना हेम्ना) सुवर्ण से स्वर्ण विनिर्मित छलनी से (पूयमानः) पवित्र-शुद्ध किया जाता हुआ (देवः) सोमदेव (देवेभिः देवैः) अग्नि-इन्द्रादि देवों के साथ (रसं) अपने रस को (समपृक्त) मिश्रित करता है, मिलाता है। (पशुमन्ति मिता सद्म होता इव) पशुओं से युक्त यज्ञ के लिए बनाए गए गृहों में आने वाले प्रवेश करने वाले होता नामक ऋत्विक् की भाँति (सुतः) निचोड़ा गया रस निकाला गया सोम (रेभन्) शब्द करता हुआ. गरजता हुआ (पवित्रं) पवित्र शुद्ध करने वाली छलनी के ऊपर (परि एति) आता है।४

५. (मतीनां जनिता) स्तुतियों को उत्पन्न करने वाला (दिवः जनिता) द्युलोक को उत्पन्न करने वाला (पृथिव्याः जनिता) पृथिवी लोक को उत्पन्न करने वाला (अग्नेः जनिता) अग्नि को उत्पन्न करने वाला

(सूर्यस्य जनिता) सूर्य को उत्पन्न करने वाला (इन्द्रस्य जनिता) इन्द्र को उत्पन्न करने वाला (उत विष्णोः जनिता) और विष्णु को उत्पन्न करने वाला (सोमः पवते) सोम पवित्र, शुद्ध किया जा रहा है, द्रोणकलश में बह रहा है, बाहर प्रवाहित हो रहा है।५

६. (वाणी:) [स्तुति करने वाले याज्ञिकों की वाणी (त्रिपृष्ठ) तीन पृष्ठ आधार, स्तोत्रों वाले द्रोणकलशादि तीन स्थानों वाले, प्रातः, माध्यन्दिन, सायं तीन सवनों वाले (वृषणं) कामनाओं की वर्षा करने वाले (वयोधां) शक्ति, अन्न को धारण करने वाले प्रदान करने वाले (अङ्गोषिणं) शब्द घोष उत्पन्न करने वाले, गरजने वाले [सोमदेव के लिए] (अभि अवावशन्त) पुनः पुनः उच्चारण करती है, प्रार्थना करती है। (सिन्धून बसानः) नदियों को आच्छादित करने वाले (वरुणः न) वरुण देव की तरह (वना वनानि) [द्रोणकलश स्थित] जलों को (वसानः) आच्छादित करने वाला (रत्नधा) रत्नों को धारण-प्रदान करने वाला सोम (वार्याणि) वरण करने योग्य वाञ्छित धनों को (विदयते) अच्छी प्रकार प्रदान करता है।६

७. (प्रथमे विधर्मन्) अत्यन्त उत्कृष्ट विस्तृत सभी को धारण करने वाले यज्ञ में (प्रजाः जनयन्) प्रजाओं को उत्पन्न करता हुआ (भुवनस्य गोपाः) पृथिवी अन्तरिक्ष इत्यादि लोकों की रक्षा करने वाला (समुद्रः) जल की वर्षा करने वाला जलयुक्त सोम (अक्रान्) सभी का अतिक्रमण कर रहा है। (अव्ये पवित्रे) ऊन विनिर्मित छलनी के ऊपर (अधि सानः) अभिषव किया जाता हुआ, शुद्ध किया जाता हुआ (वृषा) कामनाओं की वर्षा करने वाला (बृहत् सोमः) महान् सोमदेव (अद्रिः) पर्वत-मेघ जलदरूप वाला (स्वानंः) शब्द करता हुआ. गरजता हुआ (वावृधे) बढ़ता है, वृद्धि को प्राप्त करता है।७

८. (आ सृज्यमानः) चारो तरफ अभिषव किया जाता हुआ (पुनानः) पवित्र, शुद्ध किया जाता हुआ (वनस्य जठरे) काष्ठ विनिर्मित द्रोणकलश के भीतर (सीदन्) बैठता हुआ प्रवेश करता हुआ (हरिः) हरितवर्ण का सोम (कनिक्रन्ति) पुनः पुनः क्रन्दन शब्द करता है गर्जन करता है (नृभिः) मनुष्यों के द्वारा (यतः) संयत द्रोणकलश में स्थापित हो कर (गां) श्वेत वर्ण के दुग्ध को (निःनिज) अपने स्वरूप का, हरे रंग का (कृणुते) बना देता है (अतः) इसलिए हे स्तुति करने वाले याज्ञिकगण (स्वधाभिः) अन्न आहुतियो के साथ (मति) बुद्धि-स्तुति को (जनयत) उत्पन्न करो-स्तुति करो।८

९. (इन्द्र) हे इन्द्रः (एषः स्यः ते) यह वह तुम्हारे लिए (मधुमान्) मधुररसयुक्त-मीठा (वृष्णः) वर्षणशील (वृषा) कामनाओं की वर्षा करने वाला (सोमः) सोमरस (पवित्रे) पवित्र शुद्ध करने वाली छलनी के ऊपर (परि अक्षाः) चारों तरफ प्रवाहित हो रहा है। (सहस्त्रदाः) हजारों सुख प्रदान करने वाला (शतदाः) सैकड़ों शक्तियों को प्रदान करने वाला (भूरिदावा) प्रभूत-प्रचुर मात्रा में धन-सुखादि प्रदान करने वाला (वाजी) शक्तिशाली बलवान् सोम (शश्वत्तमं) नित्य सदैव (बर्हिः) यज्ञ की वेदि पर (आ-अस्थात्) स्थित हुआ-सदैव अधिष्ठित रहता है।९

१०. (मधुमान्) मधुर रसयुक्त (ऋतवा) सत्यनियम वाले यज्ञ वाले (अपः वसानः) जल को आच्छादित करने वाले द्रोणस्थ जल के ऊपर तैरते हुए (अव्ये अधि सानः) अवि-मेष सम्बन्धी-ऊन विनिर्मित पवित्र छलनी पर अभिषव किए जाते हुए, निचोड़े जाते हुए (पवस्व सोम) हे सोमदेव ! तुम पवित्र बनो, द्रोणकलश के बाहर प्रवाहित होवे (मदिन्तमः) अत्यन्त मदकारी (मत्सरः) आनन्ददायक (इन्द्रपानः) इन्द्र के प्रिय पेय [हे सोमदेव] (घृतवन्ति द्रोणानि) जलयुक्त कलशों में (अवरोह) तुम आरोहण करो - प्रवेश करो।१०

आ नो भद्राः- शान्तिसूक्त

(शुक्लयजुर्वेद काण्वशाखीय)

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः।

देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥१॥

१. हमें सब ओर से ऐसे कल्याणकारी विचार आते रहें जो अदम्य व अबाधित हों एवं अज्ञात विषयों को प्रकट करने वाले हों। प्रगति को न रोकने वाले और सदैव रक्षा में तत्पर देवता प्रतिदिन हमारी वृद्धि के लिए तत्पर रहें।

देवानाम्भद्रा सुमतिर्ऋजूयतान्देवानाꣳ रातिरभि नो निवर्तताम्।

देवानाꣳ सख्यमुप सेदिमा वयन्देवा न आयुः प्र तिरन्तु जीवसे ॥२॥

२. यजमान की इच्छा रखनेवाले देवताओं की कल्याणकारिणी सुबुद्धि हमारे सम्मुख रहे, देवताओं का दान हमें प्राप्त हो, हम देवताओं की मित्रता प्राप्त करें, देवता हमारी आयु को जीवन के निमित्त बढ़ायें।

तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयम्भगं मित्रमदितिन्दक्षमस्रिधम्।

अर्यमणँवरुणꣳ सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥३॥

३. हम वेदरूप सनातन वाणी से अच्युतरूप भग, मित्र, अदिति, प्रजापति, अर्यमा, वरुण, चन्द्रमा और बुद्धि के लिए अश्विनीकुमारों का आवाहन करते हैं। सरस्वती हमारा कल्याण करे।

तन्नो वातो मयोभुवातु भेषजन्तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः।

तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना श्रृणुतन्धिष्ण्या युवम्॥४॥

४. वायुदेवता हमें सुखकारी औषधियाँ प्राप्त करायें। माता पृथ्वी और पिता स्वर्ग भी हमें सुखकारी औषधियाँ प्रदान करें। सोम का अभिषव करने वाले सुखदाता ग्रावा उस औषधरूप अदृष्ट को प्रकट करें। हे अश्विनी-कुमारो! आप दोनों सबके आधार हैं, हमारी प्रार्थना सुनिये।

तमीशानञ्जगतस्तस्थुषस्पतिन्धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम्।

पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥५॥

५. हम स्थावर-जंगम के स्वामी, बुद्धि को सन्तोष देनेवाले इन्द्रदेवता का रक्षा के निमित्त आवाहन करते हैं। वैदिक ज्ञान एवं धन की रक्षा करने वाले, पुत्ररूपी स्तोताओं के पालक, पूषा देवता हमारी वृद्धि और कल्याण के निमित्त हों।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।

स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥६॥

६. महती कीर्ति वाले ऐश्वर्यशाली इन्द्र हमारा कल्याण करें, जिसको संसार का विज्ञान और जिसका सब पदार्थों में स्मरण है, सबके पोषणकर्ता वे पूषा हमारा कल्याण करें। जिनके रथ की गति को कोई रोक नहीं सकता, वे गरुडदेव हमारा कल्याण करें। वेदवाणी के स्वामी बृहस्पति हमारा कल्याण करें।

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभँय्यावानो विदथेषु जग्मयः।

अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसागमन्निह ॥७॥

७. चितकबरे वर्ण के घोड़ों वाले, पृश्नि माता से उत्पन्न, सबका कल्याण करने वाले, यज्ञों में आवाहित, अग्निरूपी जिह्वा वाले, सर्वज्ञ, सूर्यरूप नेत्र वाले मरुद्गण और विश्वेदेव देवता हविरूप अन्न को ग्रहण करने के लिये हमारे इस यज्ञ में आयें।

भद्रङ्कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रम्पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितँय्यदायुः ॥८॥

८. हे यजमान के रक्षक देवताओं! हम दृढ अंगों वाले शरीर से आपकी स्तुति करते हुए कानों से कल्याण की बातें सुनें, नेत्रों से कल्याणमयी वस्तुओं को देखें, देवताओं की उपासना-योग्य आयु को प्राप्त करें ॥ ॥

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसंन्तनूनाम्।

पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषितायुर्गन्तोः ॥९॥

९. हे देवताओं! आप सौ वर्ष की आयु-पर्यन्त हमारे समीप रहें, जिस आयु में हमारे शरीर को जरावस्था प्राप्त हो, जिस आयु में हमारे पुत्र पिता अर्थात् पुत्रवान् बन जाएँ, हमारी उस गमनशील आयु को आप बीच में खण्डित न होने दें।

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः।

विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥ १०॥

१०. अदिति द्युलोक है, वही अन्तरिक्ष-रूप है, वही माता-पिता और पुत्र भी है। समस्त देवता अदिति के ही स्वरूप हैं, सभी मनुष्य अदितिमय हैं, जो उत्पन्न हो चुका है और जो उत्पन्न होगा, सब अदिति के ही स्वरूप हैं।

भूमिसूक्त –

(अथर्ववेद- १२.१.१,६,१२,२३,४१,४९)

अथर्ववेद शौनक शाखा के द्वादश काण्ड का प्रथम सूक्त भूमि सूक्त के नाम से प्रसिद्ध है। जिसके द्रष्टा ऋषि अथर्वा तथा देवता भूमि हैं। इसमें ६३ मन्त्र हैं। जिन मन्त्रों में वर्णित धर्म और नीति के पालन से संसार के प्राणिमात्र का कल्याण होता है। उक्त सूक्त राष्ट्रिय अवधारणा तथा वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को विकसित, पोषित एवं पल्लवित करने के लिए अत्यन्त उपयोगी सूक्त है। यहाँ अथर्वा ऋषि ने सम्पूर्ण पृथ्वी को माता के रूप में सम्बोधित करते हुये उत्तम वर के लिए प्रार्थना की है। इसके अतिरिक्त भूमि सूक्त में पृथ्वी की वैदिक अवधारणा का विशद चिन्तन है जिसमें पृथ्वी की आधिभौतिक और आधिदैविक अवधारणा का भी वर्णन हुआ है तथा इस क्रम में मातृभूमि के प्रेम एवं पर्यावरणीय अवधारणाओं का विकास भी हुआ है।

१. सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु॥१॥

२. विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्र ऋषभा द्रविणे नो दधातु॥६॥

३. यत्ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः॥१२॥

४. यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः।
यं गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन॥२३॥
५. यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः।
सा नो भूमिः प्र णुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु॥४१॥
६. ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहा व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति।
उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित ऋक्षीकां रक्षो अप बाधयास्मत्॥४९॥

1. सत्य, वृहद्, ऋत, उग्र, दीक्षा, तप, ब्रह्म और यज्ञ ये आठ तत्त्व धारण करते हैं। उक्त गुणों के माध्यम से वह पृथ्वी समस्त, प्राचीन, अर्वाचीन तथा भविष्य काल के पदार्थों और प्राणियों का पालन करती है। ऐसी पृथ्वी हम उपासक जनों के लिए निवासस्थान को विस्तृत और अनुकूल बनावे॥१॥
2. पृथ्वी समस्त प्राणियों का पोषण करने वाली, स्वर्ण, रजत आदि वस्तुओं की आधारभूता, स्वर्णमय वक्षस्थल वाली तथा जगत् का निवास स्थान है। वह वैश्वानर, अग्नि, इन्द्र तथा ऋषभ देवताओं को धारण करती हुई, भूमि हम उपासकों में विभिन्न प्रकार के धन प्रदान करें। केवल धन सम्पत्ति सुर्वणादि ही नहीं वरन् खाद्य प्रदार्थों को प्रदान करने वाली भी है॥६॥
3. धन-धान्य, अन्नादि प्रदात्री मातृभूमि के प्रति प्रेम या राष्ट्र भक्ति का सन्देश दिया गया है। पृथ्वी को माता कहा गया है। माता गर्भ में रखती है और उत्पन्न होने के बाद पोषण देती है। तरुण होने पर शुभाशीष देती है। पृथ्वी भी ऐसी ही है। हम सब इसी में उगते हैं। सभी सांसारिक व आध्यात्मिक कार्यों का स्थल यह पृथ्वी ही है। मोक्ष या मुक्ति के प्रयत्नों का आधार भी यही पृथ्वी है। मोद-प्रमोद और आनन्द का क्षेत्र भी पृथ्वी है। हम सबकी काया पृथ्वी से बनती है इसलिए देश के प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपनी मातृभूमि से प्रेम करे॥१२॥
4. हे भूमि आप गन्धयुक्त सुगन्ध भरी हुई है। यह औषधियों और वनस्पतियों में प्रकट होती हैं। इस गन्ध को अप्सराएँ, गन्धर्वगण धारण करते हैं। हे भूमि! आप हमें उसी गन्ध से आपूरित करें। हम किसी से द्वेष न करें। हम सब प्रेमभाव से रहें॥२३॥
5. जिस भूमि पर विविध प्रकार के प्राणीजन गीत गाते हैं एवं नृत्य करते हैं, जिस भूमि पर कोलाहल करने वाले योद्धा लड़ते हैं तथा जिस भूमिभाग पर ढोल बजता है, वह भूमि हमारे शत्रुओं को दूर करते हुए उनसे हमारी रक्षा करें॥४१॥
6. हे माता पृथिवी ! वन में विचरण करने वाले हितकारी हिरण आदि पशु हमारे लिए शुभदायक हो, मनुष्यों के अहितकारी सिंह-बाघ आदि दुष्ट जीवों ,राक्षसों -पिशाचों आदि से हमारी रक्षा करें॥४९॥

मनुस्मृति

प्रथम अध्याय

मनुमेकाग्रमासीनमभिगम्य महर्षयः।

प्रतिपूज्य यथान्यायमिदं वचनमब्रुवन।।1।।

अर्थ - मनु महाराज एकांत जगह में बैठे हुए हैं। वहां पर बहुत सारे ऋषि-मुनि जाते हैं और भगवान मनु की पूजा-अर्चना करते हैं। इसप्रकार पूजा के फलस्वरूप मनु महाराज से प्रश्न करते हैं कि-

भगवन्! सर्ववर्णानां यथावदनुपूर्वशः।

अन्तरप्रभवाणां च धर्मान्नो वक्तुमर्हसि।।2।।

अर्थ- हे भगवान! सभी वर्णों (जाति) का धर्म यथावत् हमको बताइये। एवं इन वर्णों के अंदर जितने भी धर्म-सम्प्रदाय हैं, उन सभी के धर्मों के बारे में हमें बताने की कृपा करें।

त्वमेको ह्यस्य सर्वस्य विधानस्य स्वयम्भुवः।

अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य कार्यतत्वार्थवित्प्रभो।।3।।

हिंदी अर्थ- हे भगवन! तुम ही इस संसार के सब विधानों के स्वयम्भू हो। अर्थात् तुमने ही इस संसार में सबसे पहले ये नियम कानून बनाए है। तुम ही एक अचिन्त्य हो।जो अप्रमेय ब्रह्म है, उसके वास्तविक तत्व को जाननेवाले तथा मोक्ष को जाननेवाले केवल एकमात्र आप ही हो।

स तै पृष्टस्तथा सम्यगमितौजा महात्मभिः।

प्रत्युवाचार्च्य तान्सर्वान्महर्षिञ्छ्रूयतामिति।।4।।

हिंदी अर्थ- ऋषि-मुनियों के पूछने पर भगवान मनु भी उन ऋषि-मुनियों के प्रत्युवचन करने से पहले उनकी अर्चना और सत्कार करते हुए प्रत्युवचन देते हैं और कहते हैं सुनो! (आप लोग भी ध्यान से सुनिए और ध्यान से पढिए)

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।

अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः।।5।।

हिंदी अर्थ- भगवान मनु ऋषि -मुनियों से कहते हैं- यह सम्पूर्ण संसार अंधकारमय था। कहीं भी कुछ नहीं था। न कोई इसको जान सकता था और न ही इसका कोई लक्षण था। इसके बारें में कोई तर्क-

वितर्क भी नहीं कर सकता था। यह जानने योग्य नहीं था। यह प्रसुप्त (सोये हुए) संसार की आदिम अवस्था ही सबसे पहली अवस्था थी। उस समय अंधकार ही अंधकार था। बिल्कुल सोये हुए व्यक्ति के जैंसे यह ब्रह्माण्ड भी अन्धकार में सोया हुआ था।

तदण्डमभवद्धैमं सहस्त्रांशुसमप्रभम्।

तस्मिन्यज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः।।6।।

हिंदी अर्थ- इस सृष्टि को बनाने से पहले भगवान ने जो स्वयंभू था। अर्थात् स्वयं उत्पन्न हुआ। उसने सबसे पहले अपने आप को बनाया । तत्पश्चात उन्होंने इस सृष्टि की रचना करने का संकल्प लिया और उन्होंने 5 तत्वों को निर्माण किया। "क्षिति जल पावक गगन समीरा। अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश इन पंच महाभूतों की उत्पत्ति की।

योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः।

सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ ।।7।।

हिंदी अर्थ- जो ईश्वर था, जिसने इस सृष्टि की रचना की, जिसने इन पंच भूतों को व्यक्त किया, जिसने इस जगत की उत्पत्ति की, जो स्वयंभू था, जो परमात्मा था जिसकी उत्पत्ति का कोई कारण नहीं था। ऐंसा ईश्वर जिसको इंद्रियों के द्वारा जाना नहीं जा सकता है। जिसके बारे में कोई कुछ बता भी नहीं सकता है। वह सनातन है। अनादि व अनन्त है और सभी प्राणियों में वही ईश्वर है। ऐंसे उस अनादि अनन्तरूप परमेश्वर ने सबसे पहले अपने आप को ही बनाया।

सोऽभिध्यायशरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।

अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ।।8।।

हिंदी अर्थ- जो वह परमात्मा था। उसने सर्वप्रथम सृष्टि की रचना करने के लिए अपने मन ही मन में ध्यान करके अपने ही शरीर से सबसे पहले जल की उत्पत्ति की और फिर उस जल में एक बीज बोया।

तदण्डमभवद्धैमं सहस्त्रांशुसमप्रभम्।

तस्मिन्जज्ञे स्वयं ब्रहमा सर्वलोकपितामहः ।।9।।

हिंदी अर्थ- जो बीज उस परमात्मा ने जल में बोया था। उस बीज फिर से अंडा उत्पन्न हुआ, जो सोने का अण्डा था। वह स्वर्णमय अण्डा करोड़ों सूर्य की रोशनी के समान चमक रहा था। फिर उस अंडे से सभी लोगों के परम पिता ब्रह्मा जी ने अपने आप को प्रगट किया।

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।

ता यदस्यायनं पूर्वं येन नारायणः स्मृतः ।।10।।

हिंदी अर्थ- जो जल है। वह भगवान नर (विष्णु) के पुत्र समान है। अरः जल को नार कहा जाता है क्योंकि जल नर अर्थात् विष्णु से उत्पन्न होता है। (नरस्य अपत्यम् इति नारम् अण् प्रत्यय) । नर भगवान विष्णु को ही कहा जाता है और उनसे ही जल की उत्पत्ति हुई। इसलिए जल को नार भी कहा जाता है। नार का आयन अर्थात् आश्रय होने के कारण ही भगवान विष्णु को नारायण भी कहा जाता है।

यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्।

तद्विसृष्टः सः पुरुषो लोके ब्रह्मेति कल्प्यते ।।11।।

हिंदी अर्थ- सबसे पहले जो कारण था। जिसे कोई जान नहीं सकता था। वह नित्य था। सनातन था। सद् और असद् दोनों से युक्त था। नित्य संसार व अनित्य संसार दोनों उसी में समाए थे। उसको जो रचने वाला था, जो सृष्टि को रचने वाला था, जो कारण को जो रचने वाला था जो सबसे पहले था वही इस संसार में ब्रह्म के रूप में जाना जाता है।

तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ।

स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद्विधा ।।12।।

हिंदी अर्थ- उस अंडे में वही भगवान स्वयंभू 1 साल तक रहे थे। उस अंडे के अंदर ही ब्रह्मा जी ने ध्यान लगा कर गहन चिंतन व कल्पना करके उस अंडे के दो टुकड़ों मैं विभाजित कर दिया। जब अंडे के दो टुकड़े हो गए तब उन टुकड़ों से स्वर्ग आदि लोकों का निर्माण हुआ।

ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे।

मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम् ।।13।।

हिंदी अर्थ- "मनुस्मृति" ग्रन्थ के रचनाकार स्वायम्भूव मनु ऋषियों के सम्मुख जगत् की सृष्टि के बारे में बताते है कि सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने एक वर्ष तक उस स्वर्णमय अण्डे में रहकर ध्यान किया एवं उस विराट अण्डे को दो भागो में विभाजित किया। विभाजित हुये अण्डे के दो टुकड़ों से ब्रह्मा ने ऊपर वाले भाग से स्वर्गलोक , मध्यभाग से अन्तरिक्ष लोक एवं नीचे वाले भाग से पृथ्वीलोक का निर्माण किया। अर्थात् सत्वगुणरूपी स्वर्ग एवं तमोगुणरुपी भूलोक के बीच रजोगुणरुपी अन्तरिक्ष का निर्माण हुआ। इसके

साथ-साथ उस परमपिता ब्रह्मा ने उसी अण्डे से फिर पूर्वादि अष्ट दिशाओं का एवं समुद्र आदि का निर्माण भी किया।

उद्बबर्हात्मनश्चैव मनः सदसदात्मकम् ।
मनसश्चाप्यहङ्कारमभिमन्तारमीश्वरम् ॥ १.१४॥
महान्तमेव चात्मानं सर्वाणि त्रिगुणानि च ।
विषयाणां ग्रहीतॄणि शनैः पञ्चेन्द्रियाणि च ॥ १.१५॥
तेषां त्ववयवान् सूक्ष्मान् षण्णामप्यमितौजसाम् ।
संनिवेश्यात्ममात्रासु सर्वभूतानि निर्ममे ॥ १.१६॥
यन् मूर्त्यवयवाः सूक्ष्मास्तानीमान्याश्रयन्ति षट् ।
तस्माच्छरीरमित्याहुस्तस्य मूर्तिं मनीषिणः ॥ १.१७॥
तदाविशन्ति भूतानि महान्ति सह कर्मभिः ।
मनश्चावयवैः सूक्ष्मैः सर्वभूतकृदव्ययम् ॥ १.१८॥
तेषामिदं तु सप्तानां पुरुषाणां महौजसाम् ।
सूक्ष्माभ्यो मूर्तिमात्राभ्यः सम्भवत्यव्ययाद्व्ययम् ॥ १.१९॥
आद्याद्यस्य गुणं त्वेषामवाप्नोति परः परः ।
यो यो यावतिथश्चैषां स स तावद्गुणः स्मृतः ॥ १.२०॥
सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक्पृथक् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे ॥ १.२१॥
कर्मात्मनां च देवानां सोऽसृजत्प्राणिनां प्रभुः ।
साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञं चैव सनातनम् ॥ १.२२॥
अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थं ऋच्।यजुस्।सामलक्षणम् ॥ १.२३॥
कालं कालविभक्तीश्च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा ।
सरितः सागरान् शैलान् समानि विषमानि च ॥ १.२४॥
तपो वाचं रतिं चैव कामं च क्रोधमेव च ।

सृष्टिं ससर्ज चैवैमां स्त्रष्टुमिच्छन्निमाः प्रजाः ॥ १.२५॥

कर्मणां च विवेकार्थं धर्माधर्मौ व्यवेचयत् । विवेकाय

द्वन्द्वैरयोजयच्चैमाः सुखदुःखादिभिः प्रजाः ॥ १.२६॥

अण्व्यो मात्रा विनाशिन्यो दशार्धानां तु याः स्मृताः ।

ताभिः सार्धमिदं सर्वं सम्भवत्यनुपूर्वशः ॥ १.२७॥

यं तु कर्मणि यस्मिन् स न्ययुङ्क्त प्रथमं प्रभुः ।

स तदेव स्वयं भेजे सृज्यमानः पुनः पुनः ॥ १.२८॥

हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ।

यद्यस्य सोऽदधात्सर्गे तत्तस्य स्वयमाविशत् ॥ १.२९॥

यथर्तुलिङ्गान्यर्तवः स्वयमेवर्तुपर्यये ।

स्वानि स्वान्यभिपद्यन्ते तथा कर्माणि देहिनः ॥ १.३०॥

लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः ।

ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत् ॥ १.३१॥

द्विधा कृत्वाऽत्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत् ।

अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः ॥ १.३२॥

तपस्तप्त्वाऽसृजद्यं तु स स्वयं पुरुषो विराट् ।

तं मां वित्तास्य सर्वस्य स्त्रष्टारं द्विजसत्तमाः ॥ १.३३॥

अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ।

पतीन् प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दश ॥ १.३४॥

मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।

प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च ॥ १.३५॥

एते मनूंस्तु सप्तान् यानसृजन् भूरितेजसः ।

देवान् देवनिकायांश्च महर्षींश्चामितोजसः ॥ १.३६॥

यक्षरक्षः पिशाचांश्च गन्धर्वाप्सरसोऽसुरान् ।

नागान् सर्पान् सुपर्णांश्च पितृणांश्च पृथग्गणम् ॥ १.३७॥ पितृणां

विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितैन्द्रधनूंषि च ।

उल्कानिर्घातकेतूंश्च ज्योतींष्युच्चावचानि च ॥ १.३८॥

किन्नरान् वानरान् मत्स्यान् विविधांश्च विहङ्गमान् ।

पशून् मृगान् मनुष्यांश्च व्यालांश्चोभयतोदतः ॥ १.३९॥

कृमिकीटपतङ्गांश्च यूकामक्षिकमत्कुणम् ।

सर्वं च दंशमशकं स्थावरं च पृथग्विधम् ॥ १.४०॥

एवमेतैरिदं सर्वं मन्नियोगान् महात्मभिः ।

यथाकर्म तपोयोगात्सृष्टं स्थावरजङ्गमम् ॥ १.४१॥

येषां तु यादृशं कर्म भूतानामिह कीर्तितम् ।

तत्तथा वोऽभिधास्यामि क्रमयोगं च जन्मनि ॥ १.४२॥

पशवश्च मृगाश्चैव व्यालाश्चोभयतोदतः ।

रक्षांसि च पिशाचाश्च मनुष्याश्च जरायुजाः ॥ १.४३॥ मनुषाश्च

अण्डजाः पक्षिणः सर्पा नक्रा मत्स्याश्च कच्छपाः ।

यानि चैवं।प्रकाराणि स्थलजान्यौदकानि च ॥ १.४४॥

स्वेदजं दंशमशकं यूकामक्षिकमत्कुणम् ।

ऊष्मणश्चोपजायन्ते यच्चान्यत्किं चिदीदृशम् ॥ १.४५॥

उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः ।

ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः ॥ १.४६॥

अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः ।

पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृताः ॥ १.४७॥

गुच्छगुल्मं तु विविधं तथैव तृणजातयः ।

बीजकाण्डरुहाण्येव प्रताना वल्ल्य एव च ॥ १.४८॥

तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना ।

अन्तस्संज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः ॥ १.४९॥

एतदन्तास्तु गतयो ब्रह्माद्याः समुदाहृताः ।

घोरेऽस्मिन् भूतसंसारे नित्यं सततयायिनि ॥ १.५०॥

एवं सर्वं स सृष्ट्वेदं मां चाचिन्त्यपराक्रमः ।

आत्मन्यन्तर्दधे भूयः कालं कालेन पीडयन् ॥ १.५१॥

यदा स देवो जागर्ति तदेवं चेष्टते जगत् ।

यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निमीलति ॥ १.५२॥

तस्मिन् स्वपिति तु स्वस्थे कर्मात्मानः शरीरिणः । स्वपति

स्वकर्मभ्यो निवर्तन्ते मनश्च ग्लानिमृच्छति ॥ १.५३॥

युगपत्तु प्रलीयन्ते यदा तस्मिन् महात्मनि ।

तदाऽयं सर्वभूतात्मा सुखं स्वपिति निर्वृतः ॥ १.५४॥

तमोऽयं तु समाश्रित्य चिरं तिष्ठति सैन्द्रियः ।

न च स्वं कुरुते कर्म तदोत्क्रामति मूर्तितः ॥ १.५५॥

यदाऽणुमात्रिको भूत्वा बीजं स्थाणु चरिष्णु च ।

समाविशति संसृष्टस्तदा मूर्तिं विमुञ्चति ॥ १.५६॥

एवं स जाग्रत्स्वप्नाभ्यामिदं सर्वं चराचरम् ।

सञ्जीवयति चाजस्रं प्रमापयति चाव्ययः ॥ १.५७॥

इदं शास्त्रं तु कृत्वाऽसौ मामेव स्वयमादितः ।

विधिवद्ग्राहयामास मरीच्यादींस्त्वहं मुनीन् ॥ १.५८॥

एतद्वोऽयं भृगुः शास्त्रं श्रावयिष्यत्यशेषतः ।

एतधि मत्तोऽधिजगे सर्वमेषोऽखिलं मुनिः ॥ १.५९॥

ततस्तथा स तेनोक्तो महर्षिमनुना भृगुः ।

तानब्रवीदृषीन् सर्वान् प्रीतात्मा श्रूयतामिति ॥ १.६०॥

स्वायम्भुवस्यास्य मनोः षड्वंश्या मनवोऽपरे ।

सृष्टवन्तः प्रजाः स्वाः स्वा महात्मानो महौजसः ॥ १.६१॥

स्वारोचिषश्चोत्तमश्च तामसो रैवतस्तथा ।

चाक्षुषश्च महातेजा विवस्वत्सुत एव च ॥ १.६२॥

स्वायम्भुवाद्याः सप्तैते मनवो भूरितेजसः ।

स्वे स्वेऽन्तरे सर्वमिदमुत्पाद्यापुश्चराचरम् ॥ १.६३॥

निमेषा दश चाष्टौ च काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कला ।

त्रिंशत्कला मुहूर्तः स्यादहोरात्रं तु तावतः ॥ १.६४॥

अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके ।

रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः ॥ १.६५॥

पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तु पक्षयोः ।

कर्मचेष्टास्वहः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥ १.६६॥

दैवे रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः ।

अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ॥ १.६७॥

ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य यत्प्रमाणं समासतः ।

एकैकशो युगानां तु क्रमशस्तन्निबोधत ॥ १.६८॥

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम् ।

तस्य तावत्शती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः ॥ १.६९॥

इतरेषु ससंध्येषु ससंध्यांशेषु च त्रिषु ।

एकापायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥ १.७०॥

यदेतत्परिसङ्ख्यातमादावेव चतुर्युगम् ।

एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते ॥ १.७१॥

दैविकानां युगानां तु सहस्रं परिसङ्ख्यया ।

ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयं तावतीं रात्रिमेव च ॥ १.७२॥ तावती रात्रिरेव च

तद्वै युगसहस्रान्तं ब्राह्मं पुण्यमहर्विदुः ।

रात्रिं च तावतीमेव तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ १.७३॥

तस्य सोऽहर्निशस्यान्ते प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते ।

प्रतिबुद्धश्च सृजति मनः सदसदात्मकम् ॥ १.७४॥

मनः सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया ।

आकाशं जायते तस्मात्तस्य शब्दं गुणं विदुः ॥ १.७५॥

आकाशात्तु विकुर्वाणात्सर्वगन्धवहः शुचिः ।

बलवाञ्जायते वायुः स वै स्पर्शगुणो मतः ॥ १.७६॥

वायोरपि विकुर्वाणाद्विरोचिष्णु तमोनुदम् ।

ज्योतिरुत्पद्यते भास्वत्तद्रूपगुणमुच्यते ॥ १.७७॥

ज्योतिषश्च विकुर्वाणादापो रसगुणाः स्मृताः ।

अद्भ्यो गन्धगुणा भूमिरित्येषा सृष्टिरादितः ॥ १.७८॥

यद्प्राग्द्वादशसाहस्रमुदितं दैविकं युगम् ।

तदेकसप्ततिगुणं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥ १.७९॥

मन्वन्तराण्यसङ्ख्यानि सर्गः संहार एव च ।

क्रीडन्निवैतत्कुरुते परमेष्ठी पुनः पुनः ॥ १.८०॥

चतुष्पात्सकलो धर्मः सत्यं चैव कृते युगे ।

नाधर्मेणागमः कश्चिन् मनुष्यान् प्रति वर्तते ॥ १.८१॥ उपवर्तते

इतरेष्वागमाद्धर्मः पादशस्त्ववरोपितः ।

चौरिकानृतमायाभिर्धर्मश्चापैति पादशः ॥ १.८२॥

अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः ।

कृते त्रेतादिषु ह्येषामायुर्ह्रसति पादशः ॥ १.८३॥ वयो ह्रसति

वेदोक्तमायुर्मर्त्यानामाशिषश्चैव कर्मणाम् ।

फलन्त्यनुयुगं लोके प्रभावश्च शरीरिणाम् ॥ १.८४॥

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे ।

अन्ये कलियुगे नृणां युगह्रासानुरूपतः ॥ १.८५॥

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ।

द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ॥ १.८६॥

सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युतिः ।

मुखबाहूरुपज्जानां पृथक्कर्माण्यकल्पयत् ॥ १.८७॥

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।

दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ १.८८॥

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याऽध्ययनमेव च ।

विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥ १.८९॥ समादिशत्

पशूनां रक्षणं दानमिज्याऽध्ययनमेव च ।

वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥ १.९०॥

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ।

एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥ १.९१॥

ऊर्ध्वं नाभेर्मेध्यतरः पुरुषः परिकीर्तितः ।

तस्मान् मेध्यतमं त्वस्य मुखमुक्तं स्वयम्भुवा ॥ १.९२॥

उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्यैष्ठ्याद्ब्रह्मणश्चैव धारणात् । ज्यैष्ठ्याद्

सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः ॥ १.९३॥

तं हि स्वयम्भूः स्वादास्यात्तपस्तप्त्वाऽदितोऽसृजत् ।

हव्यकव्याभिवाह्याय सर्वस्यास्य च गुप्तये ॥ १.९४॥

यस्यास्येन सदाऽश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः ।

कव्यानि चैव पितरः किं भूतमधिकं ततः ॥ १.९५॥

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः ।

बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥ १.९६॥

ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः ।

कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः ॥ १.९७॥

उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिर्धर्मस्य शाश्वती ।

स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ १.९८॥

ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायते ।

ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये ॥ १.९९॥

सर्वं स्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किं चित्जगतीगतम् ।

श्रैष्ठ्येनाभिजनेनेदं सर्वं वै ब्राह्मणोऽर्हति ॥ १.१००॥

स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च ।

आनृशंस्याद्ब्राह्मणस्य भुञ्जते हीतरे जनाः ॥ १.१०१॥

तस्य कर्मविवेकार्थं शेषाणामनुपूर्वशः ।

स्वायम्भुवो मनुर्धीमानिदं शास्त्रमकल्पयत् ॥ १.१०२॥

विदुषा ब्राह्मणेनेदमध्येतव्यं प्रयत्नतः ।

शिश्येभ्यश्च प्रवक्तव्यं सम्यग् नान्येन केन चित् ॥ १.१०३॥

इदं शास्त्रमधीयानो ब्राह्मणः शंसितव्रतः ।

मनोवाक्देहजैर्नित्यं कर्मदोषैर्न लिप्यते ॥ १.१०४॥

पुनाति पङ्क्तिवंश्यांश्च सप्त सप्त परावरान् ।

पृथिवीमपि चैवेमां कृत्स्नामेकोऽपि सोऽर्हति ॥ १.१०५॥

इदं स्वस्त्ययनं श्रेष्ठमिदं बुद्धिविवर्धनम् ।

इदं यशस्यमायुष्यं इदं निःश्रेयसं परम् ॥ १.१०६॥ इदं यशस्यं सततम्

अस्मिन् धर्मेऽखिलेनोक्तौ गुणदोषौ च कर्मणाम् ।

चतुर्णामपि वर्णानामाचारश्चैव शाश्वतः ॥ १.१०७॥

आचारः परमो धर्मः श्रुत्योक्तः स्मार्त एव च ।

तस्मादस्मिन् सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः ॥ १.१०८॥

आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते ।

आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफलभाग्भवेत् ॥ १.१०९॥ सम्पूर्णफलभाक्स्मृतः

एवमाचारतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम् ।

सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृहुः परम् ॥ १.११०॥

जगतश्च समुत्पत्तिं संस्कारविधिमेव च ।

व्रतचर्योपचारं च स्नानस्य च परं विधिम् ॥ १.१११॥

दाराधिगमनं चैव विवाहानां च लक्षणम् ।

महायज्ञविधानं च श्राद्धकल्पं च शाश्वतम् ॥ १.११२॥

वृत्तीनां लक्षणं चैव स्नातकस्य व्रतानि च ।

भक्ष्याभक्ष्यं च शौचं च द्रव्याणां शुद्धिमेव च ॥ १.११३॥

स्त्रीधर्मयोगं तापस्यं मोक्षं संन्यासमेव च ।

राज्ञश्च धर्ममखिलं कार्याणां च विनिर्णयम् ॥ १.११४॥

साक्षिप्रश्नविधानं च धर्मं स्त्रीपुंसयोरपि ।

विभागधर्मं द्यूतं च कण्टकानां च शोधनम् ॥ १.११५॥

वैश्यशूद्रोपचारं च सङ्कीर्णानां च सम्भवम् ।

आपद्धर्मं च वर्णानां प्रायश्चित्तविधिं तथा ॥ १.११६॥

संसारगमनं चैव त्रिविधं कर्मसम्भवम् ।

निःश्रेयसं कर्मणां च गुणदोषपरीक्षणम् ॥ १.११७॥

देशधर्मान्जातिधर्मान् कुलधर्मांश्च शाश्वतान् ।

पाषण्डगणधर्मांश्च शास्त्रेऽस्मिन्नुक्तवान् मनुः ॥ १.११८॥

यथैदमुक्तवांशास्त्रं पुरा पृष्टो मनुर्मया ।

तथैदं यूयमप्यद्य मत्सकाशान्निबोधत ॥ १.११९॥

पाठ्यक्रम सम्बन्धित ग्रन्थ सूची

१. वेद पारिजात (NCERT

२. अमरकोश (प्रथम काण्ड) माहेश्वरी टीका चौखम्बा, वारणासी

३. अनुवाद चन्द्रिका (लेखक-चक्रधर नौटियाल-मितिलाल प्रकाशन)

४. व्याकरण विथिः (NCERT 10th standard)

५. लघुसिद्धान्तकौमुदी इन्दुमती टीका चौखम्बा, वारणासी

६. वेद निपुण ४ भाग (अर्थ सहित)- विश्वामित्र नदी संवाद,

७. (अर्थ सहित)- यजुर्वेदीय पुरुषसूक्त

८. वेद निपुण १ भाग -शुनःश्येप की कथा, ऋग्वेदीय पर्जन्य (वर्षा) सूक्त

९. वैदिक संस्कृति संरचना- याज्ञवल्क्य गार्गी संवाद, दिल्ली ईस्टर्न बुक लिंकर

१०. छान्दोग्य उपनिषद् हिन्दी टीका सहित- आरुणी श्वेतकेतु की संवाद

११. श्रीमद्भागवत महापुराण कृष्ण जन्म की कथा, श्रीकृष्ण की शिक्षा-दीक्षा

१२. श्रीमद्भगवद्गीता पदच्छेद अन्वय व्याख्या सहित (गीता प्रेस)

१३. हितोपदेश कथा -

१४. वैदिक सूक्तसंग्रह – गणपति अथर्वशीर्ष, सामवेदीय अग्नि सूक्त, अथर्ववेदीय मधुसूक्त, शु य आनो भद्रा सूक्त

१५. मनुस्मृति- प्रथम अध्याय (अर्थसहित) चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

राष्ट्रीय आदर्श वेद विद्यालयों
वेद पाठशालाएँ तथा गुरु-शिष्य परम्परा इकाइयाँ

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

Vedavidya Marg, Chintaman Ganesh, Post. Jawasia, Ujjain 456006 (M.P.)

दूरभाष/Phone : (0734) 2502255, 2502254

E-mail : msrvvpujn@gmail.com, Website - www.msrvvp.ac.in